ओ३म्

# गर्ग-मुख-महाचपेटिका



लेखक

—डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह

॥ ओ३म् ॥

# गर्ग-मुख-महाचपेटिका

['दयानन्द-गाली पुराण' नामक आपत्तिजनक पुस्तक
की सप्रमाण, युक्तियुक्त समालोचना]



लेखक

वैदिक गवेषक डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह
शास्त्री, एम० ए०, साहित्यालंकार, विशारद
संयुक्त सम्पादक "वेदवाणी" मासिक पत्रिका, बहालगढ़,
भूतपूर्व आदर्श सम्पादक "परोपकारी" अजमेर।
संञ्चालक—श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, "वेदवाणी" कार्यालय,
पो० बहालगढ़ १३१०२१, जिला सोनीपत, (हरयाणा)



प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर रोहतक

प्रकाशक—

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर रोहतक (हरयाणा)

प्रथम संस्करण : २०००

वेद सृष्टि सम्वत् १९६०८५३०८४

विक्रम सम्वत् : २०४१

दयानन्दाब्द : १५९

अक्टूबर सन् १९८४ ई०



मूल्य—४)००

मुद्रक—

भाटिया प्रेस,

रघुवरपुरा नं० २

गांधीनगर, दिल्ली-३१

# भूमिका

अभी कुछ दिन पूर्व मेरठ से तथाकथित डा० राजेन्द्रकुमार गर्ग द्वारा लिखित 'दयानन्द गाली पुराण, नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसमें स्वामी दयानन्द जी महाराज जैसे महापुरुष के प्रति इतनी भद्दी गालियां दी गई हैं कि जिन्हें कोई सभ्य व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। आश्चर्य होता है यह देखकर कि अपने को सभ्य कहने वाले, दर्शन जैसे गूढ़ विषय के व्याख्याता ने कितने गर्व से ये गालियां लिखी हैं। गर्ग महोदय जैन, बौद्ध, वाममार्ग जैसे सम्प्रदायों की वकालत करते समय शायद यह भूल गये कि ये सभी सम्प्रदाय सत्यता और वास्तविकता से बहुत परे हैं। क्योंकि स्वामी दयानन्द जी द्वारा की गई इन सभी सम्प्रदायों की आलोचना का कोई उत्तर नहीं है, और न ही गर्ग जी दे सकते हैं अत: जहां-तहां अनाप-सनाप बकवास लिखकर ही अपनी अति निम्नस्तर की मानसिकता का परिचय दिया है। जिससे निरे जंगलीपन का स्पष्ट आभास होता है। शायद उनकी बुद्धि को सूर्य की भांति उनके हनुमान् जी निगल गये, जो उन्हें दयानन्द रूपी चन्द्रमा पर थूकते से वापिस उन्हीं के मुंह पर गिरने वाला थूक भी दिखाई नहीं देता।

परस्पर गालियां देना विद्वान् और सभ्य पुरुषों का कार्य नहीं है। अत: श्री गर्ग को चाहिए कि अपने इस निकृष्ट और फूहड़ कार्य के लिए अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा-याचना करें। उन्हें स्वामीं दयानन्द को गालियां देते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि स्बामी दयान्द नहीं होते तो ये सनातनी, जैन, बौद्ध, नानकपंथी, कबीरपंथी आदि हिन्दू किसी भी रूप में होते लेकिन स्पष्ट रूप से अपने को हिन्दू कहने वाला शायद कोई नहीं मिलता। जिन ईसाई और मुसलमानों की वकालत गर्ग महोदय कर रहे हैं वे हिन्दुओं को मिटाने में सदा से लगे हुए हैं। आज भी इन दोनों समुदायों के लिए विदेशों से अरबों रुपये धर्म परिवर्तन के लिए आ रहे हैं और आये दिन गांव के गांव ईसाई और मुसलमान होते जा रहे और श्री गर्ग हैं कि उन्हीं की खुशामद में लगे हैं। तरस आता है श्री गर्ग की बाल-बुद्धि पर। भगवान् उन्हें सद्बुद्धि दें।

ईश्वरीय ज्ञान वेद को लोग १९वीं शताब्दी में विविध मत-मतान्तरों के मोटे-मोटे ग्रन्थों के नीचे दबे होने के कारण देख ही नहीं पाते थे। अध्ययन-अध्यापन और आचरण की तो बात ही दूर थी। स्वामी दयानन्द द्वारा पौराणिक मत और अन्य मतावलम्बियों के खण्डन का तात्पर्य इतना ही था कि ईश्वरीय ज्ञान वेद को लोग जानकर पठन-पाठन एवं अपने व्यवहार में पुनः मूलरूप से स्वीकार करें।

मूर्तिपूजा, व्यक्तिपूजा पर खड़े मत-मतान्तरों का खंडन, सृष्टिकर्त्ता की उपासना और भक्ति करने का खंडन नहीं है। अपितु इनसे फैली कुरीतियों अन्धपरम्पराओं को समाप्त करने का एक प्रयास है।

स्वामी जी महाराज ने भारतीय समाज में उत्पन्न बुराइयों का एक विश्लेषण सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध में किया है। ईसाई शासकों के राज्य में उनके धर्मग्रन्थ को चुनौती देने का साहस स्वामी दयानन्द ने ही किया था। जैन, बौद्ध और चारवाक आदि अनीश्वरवादी मतों का खण्डन गर्ग जी को गाली पुराण दृष्टिगोचर होता है तो उन्हें स्वामी जी की ये पंक्तियां वार-वार पढ़नी चाहिएं—

'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है, परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुःखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी **मनुष्य जाति की उन्नति** का कारण नहीं है।' (सत्यार्थ प्रकाश भूमिका)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डा० शिवपूजन सिंह शास्त्री कुशवाह समस्त आर्यजगत् के धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने अपनी सजग लेखनी से उन सभी बकवासों का युक्तियुक्त, सप्रमाण, तर्कसंगत और मुंहतोड़ उत्तर दिया है जिनका उल्लेख गालिपुराण में हुआ है। और इससे भी अधिक वे धन्यवाद के पात्र इसलिए हैं कि उन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ १००० (एक हजार) रुपये का आर्थिक सहयोग भी किया है। और भी जिन व्यक्तियों का सहयोग इस पुस्तिका के प्रकाशनार्थ मिला है, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

—ओमानन्द सरस्वती

ओ३म्

# दुर्जन मुख महाचपेटिका

कुछ व्यक्ति महापुरुषों की स्तुति करते हैं तो कुछ दुष्ट प्रकृति के पुरुष महा-पुरुषों के प्रति अपशब्द का व्यवहार करते हैं। ऐसे ही व्यक्ति किसी प्रकार अपना नाम प्रसिद्ध करना चाहते हैं।

ऐसे दुष्ट, युयुक्षु प्रकृति के डॉ० राजेन्द्र कुमार गर्ग एम० ए०, पी० एच० डी० दर्शन विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ हैं जो महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के प्रति अपशब्द व अशिष्ट व्यवहार करके अपना नाम चाहते हैं। ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है—

घटं भित्त्वात्पटं छित्त्वा कृत्वारासभनिःस्वनम्।

येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्।"।

"घड़ा फोड़कर, वस्त्र फाड़कर और गदहे की ध्वनि करके (रेंक कर) किसी प्रकार पुरुष प्रसिद्ध होवे।"

माननीय गर्ग जी भी गदर्भध्वनि में "दयानन्द-गाली पुराण नामक पुस्तक लिख-कर प्रसिद्ध पुरुष होने की कुचेष्टा कर रहे हैं। यह पुस्तक सन् १९८४ ई० में प्रथम संस्करण, श्री नरेन्द्र कुमार जैन शास्त्री, संयोजक देवी पुरस्कार योजना समिति सदर मेरठ द्वारा प्रकाशित है। पुस्तक में महर्षि दयानन्द जी के प्रति अपशब्दों का व्यवहार करके गर्ग महोदय ने अपने कलुषित हृदयोद्गार प्रकट किए हैं। पुस्तक ५० पृष्ठ की है। अपशब्दों का का नमूना देखिए—

"आर्यसमाजियों के लिए 'दयानन्दियों' (पृष्ठ ४); मूर्खराट्दयानन्द (पृ० ३); गालीराट् दयानन्द को निर्दयानन्द (पृ० ४); नियोगी दयानन्द, वज्रमूर्ख दयानन्दी (पृ०५); दयानन्द की बदमाशी (पृ० १०); महामूर्खराट् दयानन्द (पृ० १३); दयानन्द इंसान नहीं, हैवान, विद्वान नहीं महामूर्ख, स्वस्थ नहीं कोढ़ी, योगी नहीं भोगी, सदाचारी नहीं दुराचारी (पृ० १९); महावज्र मूर्खाचार्य क्या नयानन्द रमाबाई ही को प्रिय थे (पृ० २०); आदि।"

आपने आचार्य के प्रति ऐसे अपशब्दों को सुनकर आर्यसमाजियों को सहिष्णु ही कहा जाएगा।

यदि ऐसे शब्दों का प्रयोग लेखक ने हजरत मुहम्मद साहब के प्रति किया होता तो लेने के देने पड़ते। जिसके पास जो होता है वही देता है। गर्ग जी के पास गाली के सिवाय और कुछ नहीं है। उन्होंने जो अशिष्टता, उदण्डता, प्रदर्शित की है उनको मैं वापस करता हूं। सूर्य पर जो थूक फेंकता है वह उसी के ऊपर आकर पड़ता है।

इस पुस्तक में शिष्ट भाषा में गर्ग जी के आक्षेपों का सप्रमाण युक्ति युक्त उत्तर दे रहा हूं। आपने इस पुस्तक में जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, कबीर पंथ, नानक पंथ, राम-स्नेही पंथ, पुष्टि मार्ग, स्वामी नारायण मत, ब्राह्मसमाज, ईसाई, मुसलमान सभी का अधिवक्ता बनने का कुप्रयास किया है। इस पुस्तक के प्रकाशक भी जैनी हैं। सम्भवतः इन्होंने इन पन्थियों से उत्कोच लेकर ही महर्षि दयानन्द जी सरस्वती को अपमानित करने की कुचेष्टा की है। पुस्तक पढ़ने से आपकी विद्वता तो प्रकट नहीं होती है वरन् छिछोरापन ही प्रकट हो रहा है।

**अब क्रमशः इस पुस्तक की समीक्षा की जाती है—**

**प्राक्कथन**—"कुतर्क आर्यसमाजियों का वंशानुगत रोग है।"

**समीक्षा**—आर्यसमाजी तो न्यायदर्शन के अनुसार तर्क करते हैं। यह उनका वंशानुगत रोग नहीं है। आपकी पुस्तक पढ़कर कोई भी आपको कुतर्की, वितण्डतावादी ही कहेगा। आपको विद्वान् तो कोई कह नहीं सकता है। आपने यह पुस्तक लिखकर "अन्धों में काना राजा" बनने का प्रयास किया है। अतः कुतर्क तो पौराणिकों का वंशानुगत रोग है। दिवंगत सर्वश्री कालूराम, अखिलानन्द, माधवाचार्य प्रभृति जीवन पर्यन्त महर्षि दयानन्द जी को गाली प्रदान करके अपने पापी पेटों को पालते रहे। उन्हीं का अनुसरण आपने करने की कुचेष्टा की है।

**गर्ग पृष्ठ १**—"शिवप्रसाद कम समझ, वह अविद्वान् "अधर्म कर्म से युक्त, उस ॰ नेत्र फूट गए हैं, वह श्वान के समान, वह प्रमत्त अर्थात् पागल, अव्युत्पन्न, अन्धा, सन्निपाती, वह कोदों देकर पढ़ा, वह अविद्यायुक्त बालक, बेचारा, संस्कृत विद्या पढ़ा नहीं…।"

**समीक्षा**—श्री राजा शिवप्रसाद पुस्तिका "निवेदन" में लिखते है—"ऐसा न हो कि 'अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः' के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थामे किसी अथाह गढ़े वा घोर नरककुण्ड में जा गिरें।"

"क्यों वृथा इतना कागज बिगाड़ा ?"; …स्वामी जी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से नया तर्क, और न्याय रूस अमरीका अथवा किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो।"

क्या राजा शिवप्रसाद जी के उपर्युक्त वाक्य पुष्प वर्षा कहलायेंगे ? जिनको एक अक्षर संस्कृत न आती हो और वे इस प्रकार प्रमत्त-प्रलाप करें तो ऐसे व्यक्ति को महर्षि दयानन्द जी ने समुचित ही लिखा है।

उन्होंने तो कोई गाली नहीं दी वरन् जैसे को तैसे कह दिया तो बुरा क्या हो गया ? आपके आचार्यगण किस प्रकार शब्दों का प्रयोग करते थे उनका भी नमूना देख लें —

'मध्व-विजय' के रचयिता वैष्णव महोदय हैं। इनकी मधुरभाषिता का नमूना देखिए—

"नारायश पण्डिताचार्य के विचार से श्री शंकराचार्य महादेव के अवतार नहीं थे अपितु पूर्व जन्म के मणिमान् नाम के राक्षस थे। उनका नाम शंकर नहीं किन्तु 'सङ्कर' था। देखिए—"सान्नाय्यस्मव्यक्तहृद् आखुभुग्वा श्वा वा पुरोडाशमसारकामः। मणिस्रजं वा प्लवगो व्यवथो जग्राह वेदादिकमेष: पापः।"

इस श्लोक में आद्यशङ्कराचार्य को चूहा भक्षण करने वाला (बिलाव), कुत्ता, बन्दर और पापी आदि बड़े मधुर शब्दों से स्मरण किया है।

: अपने "शङ्कर-दिग्विजय" की वानगी भी देख ले।

इसके प्रणेता श्री माधवाचार्य हैं जो कि वेद भाष्यकार श्री सायणाचार्य के भ्राता थे।

"मलिनैश्चेन्न सङ्गस्ते नीचैः काककुलैः पिकः।"

—(श्री शङ्करदिग्विजय सर्ग १ श्लो० ६५)[1]

इस श्लोक में श्रीकुमारिल भट्ट ने राजा सुधन्वा को "ऐ कोकिल ! यदि मलिन, काले, नीच, कानों, को कष्ट पहुंचाने वाले शब्दों को करने वाले कौवों से तुम्हारा सम्बन्ध न होता…।"

यहां भट्ट जी ने सुधन्वा को कोयल और बौद्धों को कौवा कहा है।

"सारङ्गा इव विश्वकद्रुभिरहं कुर्वद्भिरुच्छृंखलैः।"…

[श्री शङ्करदिग्विजय सर्ग ५ श्लो० ८९]

इस श्लोक में शंकर मत भिन्न मतानुयायियों को 'कुत्ता' कहा गया है।

"जृम्भान्निम्बफलाशनैकरसिकान् काकानमून् मन्महे"

[श्री शंकरदिग्विजय, सर्ग ५ श्लो० ११९]

इस श्लोक में विपक्षियों को 'कौवा' कहा गया है।

"क्ष्वेड ज्वालां खग कुलपतेः पन्नगाः साभिमानाः।"

[श्री शङ्करदिग्विजय सर्ग ६ श्लो० ७८]

---

१. "श्री शङ्कर दिग्विजय" पृष्ठ १९ [संवत् २०२४ वि० में महन्त महादेव नाथ, श्री श्रवण नाथ ज्ञान-मंदिर, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण, व पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा अनुवादित]

इस श्लोक में श्री शंकराचार्य को 'गरुड़' और विपक्षियों को 'सर्प' कहा गया है।

"प्रत्यर्थ्युलूकान् प्रविलापयन्ती भाष्य प्रभाऽभाद्यति वर्यभानोः"

[श्री शङ्करदिग्विजय सर्ग ६, श्लो० १०१

ये उन शब्दों के नमूने हैं जिन्हें पौराणिक (सनातन धर्मी) आपस में एक दूसरे के लिए लिखते हैं।

श्री आद्य शङ्कराचार्य अत्यन्त मधुरभाषी कहलाते हैं। उनके इस गुण की प्रशंसा में 'श्री शङ्करदिग्विजय' में अनेक पद्य हैं। नमूना देखिए—

"विक्रीता मधुना निजा मधुरता दत्ता मुद्रा द्राक्ष्या।
क्षीरैः पात्रधियाऽर्पिता युधि जिताल्लब्धा बलादिक्षुव—
न्यस्ता चोरभयेन हन्त सुधया यस्मादतस्तद्गिरां।
माधुर्यस्य समृद्धि रद्भततरा नान्यत्र सा वीक्ष्यते।।"

[श्री शङ्करादिग्विजय सर्ग ४ श्लो० ९१]

पं० बलदेव उपाध्यायाचार्य—आचार्य की वाणी इतनी मधुर है कि ऐसी अद्भुत मधुरता जगत् में कहीं भी नहीं दिखलाई पड़ रही है। जान पड़ता है कि मधु ने अपनी मधुरता उसके (वाणी के) हाथों बेच डाली है; अंगूर ने प्रसन्नता से उसे अपना माधुर्य दे डाला है; दूध ने इसे योग्य समझकर स्वयं अर्पित कर दिया है; युद्ध में लड़कर वह इससे जबर्दस्ती छीन ली गई है और चोरी के डर से सुधा ने उसे स्वयं वहां रख दिया है। यही कारण है कि ऐसी मधुरता संसार में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।"[२]

यह श्लोक श्री माधवाचार्य के उत्कृष्ट कवित्व का द्योतक है, किन्तु यह वर्णन वास्तविकता के विरुद्ध है। श्री शंकराचार्य जी, पं० मण्डन मिश्र के गृह पर जाते हैं और चुपचाप घर में प्रवेश कर जाते हैं। पं० मंडन मिश्र घर के कार्य में लगे हैं। वहां इन दोनों का जो मधुर भाषण हुआ उस पर गर्ग जी विचार करें—

**मण्डन मिश्र**—"कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्वहाम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति।

[श्री शङ्करदिग्विजय सर्ग ८ श्लो. २०]

अर्थ—हे दुर्बुद्धे! जब तुम गदहे के द्वारा भी न ढोने लायक कन्था (कथरी) ढो रहे हो। तब शिखा और जनेऊ कितने भारी हैं कि उन्हें काट डाला है।"[३]

यहां श्री शङ्कर व श्री मण्डन मिश्र एक दूसरे को 'दुर्बुद्धि' कह रहे हैं।

२. वही, पृष्ठ १२१
३. वही, पृष्ठ २५९

अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर,
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम्"

[श्री शङ्करदिग्विजय, सर्ग ८ श्लो० १८]

इस श्लोक में दोनों महानुभाव एक दूसरे को 'शराबी' कह रहे हैं। यह मधुर भाषण है !!

अतः महर्षि दयानन्द जी पर दोषारोपण करना भ्रममात्र है।

गर्ग, पृष्ठ २—"... परिच्छिन्न सामर्थ्य वाले एक देश में रहने वाले को ईश्वर मानना बिना भ्रांति बुद्धि युक्त जैनियों से अन्य कोई भी नहीं मान सकता।"

लगता है 'दयानन्द ने भांग के नशे में ये शब्द लिख दिए...'

**समीक्षा**—महर्षि दयानन्द जी ने भांग के नशे में नहीं लिखा है। तीर्थंकर सर्वज्ञ नहीं थे।

(१) जैन तीर्थंकर अल्पज्ञ थे। एक देशी होने से और पुरुषवत्। (२) जैन तीर्थंकर सर्वज्ञ नहीं थे, जीव होने से। अन्य जीववत्, (३) जैन तीर्थंकर अल्पज्ञ थे, जीव अयोक्तिकवाद करने से, साधारण पुरुषवत्, (४) जैन तीर्थंकर अल्पज्ञ थे, क्षुधा तृषादि-युक्त होने से, (५) जैन तीर्थंकर अल्पज्ञ थे, ऐतिहासिक पुरुष होने से, (६) जैन तीर्थंकर अल्पज्ञ थे, गर्भशायी होने से तत्वार्थसार ८/१ 'त्वपञ्चास्तिकाय' श्लोक १७१ में जैन तीर्थंकरों को अल्पज्ञ लिखा है। हरिवंश पुराण सर्ग १३ में भी जैन तीर्थंकरों को अल्पज्ञ कहा है। 'त्रिलोकसार' श्लोक २०४ में जैन तीर्थंकरों को अल्पज्ञ लिखा है।

आदि पुराण पर्व ३७ में भरत महाराज की ९६००० स्त्रियों की चर्चा है। क्या यह गप्प नहीं है ? क्या यह उन पर कलंक नहीं है ?

जैनी अहिंसक कहाते थे पर स्वयं श्री महावीर स्वामी ने मांस खाया था यथा—

"महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरी में रहते थे। वहां मक्खलि गोसाल भी गया। वे आपस में एक दूसरे के जिनत्व के विरुद्ध आलोचना करने लगे। अन्त में गोसाल ने महावीर स्वामी को शाप दिया कि तुम मेरे शाप से छः महीने के अन्त में पित्त ज्वर से मर जाओगे। तब महावीर स्वामी ने भी उसे शाप दिया कि तू सातवीं रात को पित्त ज्वर से पीड़ित होकर चल बसेगा। ऐसा ही हुआ किन्तु इससे महावीर स्वामी को अत्यन्त दाह होकर रक्त को दस्त लगने लगे तब उन्होंने अपने शिष्य सिंह से कहा कि तू मेढ़िका गांव में रेवती नाम की रमणी के पास जा उसने मेरे लिए दो कबूतर बनाकर रख छोड़े हैं उनकी अब मुझे जरूरत नहीं। जिस मुर्गी को कल बिल्ली ने मरोड़ डाला था उसी का मांस वह पका दे। उसी से मेरा काम चल जायगा। यह उससे कहना।"[४]

४. मासिक पत्र "प्रस्थान वर्ष स्थान १४ संवत् १९९५ वि, अङ्क १ में प्रकाशित श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल का श्री महावीर स्वामी का मांसाहार" शीर्षक लेख।

मूल 'भगवती सूत्र' के इस विषय के उद्धरण हैं—

"तं गच्छहणं तुमं सीहा मेंढियगामं नगरं रेवतीय गाहावतिणीह मिहे तथणं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ढाये दुबे कबोय सरीरा उबक्खडिया तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासि ए।"

मञ्जारकडए कुक्कुडमंसए तं आहराहि एक्षणं अट्ठो।

यह भगवती सूत्र जैनियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

जैन सम्प्रदाय के श्रमणों को मांस भक्षण के लिए स्पष्ट आज्ञा इनके प्रसिद्ध 'आचाराङ्ग सूत्र' में लिखी है—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सेज्जं पुण जासेज्जा बहु अट्ठियंमंसं वा,..."

अर्थात्—'वह भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा मांस मिलने पर जिसमें हड्डियां अधिक हों या कांटे वाली मछली मिलने पर समझेगा कि इसमें खाने लायक हिस्सा कम और फेंक देने योग्य अधिक है। अधिक हड्डियों वाला मांस या अधिक कांटों वाली मछली मिलती हो तो उसको लेने से अस्वीकार कर दे। भिक्षु या भिक्षुणी के किसी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाने पर यदि भिक्षा देने वाला पूछे कि आयुष्मान् श्रमण इस मांस में हड्डियां अधिक हैं, क्या इसे भिक्षा में ले सकते हैं? तो इस प्रश्न के पूछे जाने से पहले ही वह कह दे कि आयुष्मान् (और स्त्री हो तो बहन) मुझे ऐसे मांस की क्या आवश्यकता देना ही हो तो मांस दो हड्डियां न चाहिए। ऐसा कहने पर भी यदि घर का स्वामी देने का हठ करे तो उसे उचित समझ कर न ले। यदि वह पात्र में डाल दे तो एक ओर लेजाकर बाटिका में या उपाश्रय में मांस और मछलियां खाकर हड्डियों और कांटों को एक ओर ले जावे।..."

यही भाव "दशवैशालिक सूत्र" की इन गाथाओं में भी है—

"बहु अट्ठियं युग्गल आमिसं वा बहु कंटयं।
अच्छि यं तिदुयं षिल्लं उच्छुखण्डं वसिवलि।"

अप्पे सिआ भोअणज्जाए ए बहुउज्सिय धम्मियं।
दिविग्रं पडिआइक्खे न मे कप्पाई तारिसं।"

अर्थात्—बहुत हड्डियों वाला मांस, बहुत कांटों वाली मछली, अस्थिवृक्ष का फल, बेल, मन्ना, शाल्मलि इस प्रकार की वस्तुएं जिनमें खाने का हिस्सा तो कम, पर फेंकने का अधिक रहता है—मेरे काम की नहीं है, ऐसा प्रतिबन्ध कर दे।"

इन उपर्युक्त प्रमाणों की पुष्टि श्री कौसम्बीजी ने भी की है।[५]

---

५. गुजरात विद्यापीठ की पुरातत्व मन्दिर के "पुरातत्व" त्रैमासिक पत्र (गुजराती) के सन् १९२५ ई० के अंक में श्री कौसम्बीजी का प्रमाण।

**जैनियों द्वारा अन्य मतों की निन्दा—**

"सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देह मरणाइ।
तो वरिसप्पं गहियु मा कुगुरुसेवणं भद्दम्।"

[पुकर० भा०२ (षष्टी०) सू० ३७]

अर्थ—जैन मत से भिन्न सब कुगुरु अर्थात् वे सर्प से भी बुरे हैं। उनका दर्शन सेवा संग कभी न करना चाहिए। क्योंकि सर्प के संग से एक बार मरण होता है, और अन्य मार्गी कुगुरुओं के संग से अनेक बार जन्म-मरण में गिरना पड़ता है। इसलिए हे भद्र! अन्य मार्गियों के कुगुरुओं के पास भी मत खड़ा रह क्योंकि जो तू अन्यमार्गियों की कुछ भी सेवा करेगा, तो दुःख में पड़ेगा।"

जैनियों के समान कठोर भ्रांत द्वेषी निन्दक भूला हुवा दूसरे मत वाले कोई भी न होंगे।

गर्ग जी तो महर्षि दयानन्द जी पर दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने जैन मत के प्रति भंग के नशे में लिखा था तो क्या उपर्युक्त सूत्र के कर्त्ता ने भंग की तरंग में लिखा है?

पौराणिकों के मतानुसार १८ पुराणों के कर्त्ता वेद व्यास जी थे। इन्होंने पुराणों में जैनियों के प्रति लिखा है—

"न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कंठगतैरपि।
गजैरापीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्॥"

[भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, तृतीय खण्ड, अध्याय २८ श्लोक ५३] +

यावनी भाषा (उर्दू) कभी न बोले चाहे प्राण कण्ठ में आ जावे। चाहे मस्त हाथी से कुचल जाने का भय उत्पन्न हो गया हो परन्तु की रक्षा के लिए जैन मन्दिर में कभी न जावे।"

पुनः

"जैन धर्म समाश्रित्य सर्वे पापप्रमोहिताः।
वेदाचारं परित्यज्य पापं यास्यन्ति मानवाः।

+ "भविष्य महापुराण" सटिप्पणी मूल मात्र 'पृष्ठ ५२०, पुस्तकाकार (संवत् २०१५ वि० सन् १९५९ ई० में श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]

पापस्य मूलमेवं वै जैनधर्मो न संशयः ।
अनेन मुग्धा राजेन्द्र महामोहेन पातिताः ।"

[पद्म पुराणम् २ भूमिखण्डे, अष्टाविंशोऽध्यायः श्लोक २६, २७][6]

अर्थ—जैन धर्म सारे पापों से भरा हुआ है। मानव उससे मोहित होकर वेद धर्म के आचार की परित्याग कर उसे ग्रहण कर लेते हैं, वे सब पापी हो जाते हैं। जैन धर्म पापों का मूल है इसमें संशय नहीं है। हे राजेन्द्र! जो इस पर मुग्ध हो जाते हैं वे महापतित हो जाते हैं।"

क्या वेद व्यास जी ने जैनियों के प्रति भंग की तरंग में लिखा है? गर्ग जी आप पौराणिक हैं और जैनियों की हिमायत करते हैं, परन्तु आपका पुराण जैन धर्म के प्रति कैसी पुष्प वर्षा कर रहा है?

अतः महर्षि दयानन्द जी के प्रति अपशब्द लिखना आपका छिछोरापन ही कहा जायगा।

## क्या वेदों में मूर्तिपूजा की चर्चा है?

गर्ग, पृष्ठ ६-७—"...वेदों से लेकर आज तक मूर्ति पूजा चली आ रही है। अथर्ववेद की वाणी है—

"संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मती प्रजा, रायस्पोषेण संसृज॥"

[अथर्ववेद ३.१०.३]

अर्थात्—'हे रात्रि', संवत्सर (संविशन्ति प्रलयकाले भूतानि यस्मिन् सः संवत्सरः विष्णुः रुद्रो वा) अर्थात् विष्णु की जिस प्रतिमा की तुम उपासना करती हो। वह प्रतिमा धन एवं सम्पुष्टि द्वारा हमारी सन्तान को आयुष्मान् करे।'

जरा सोचिए, इतने प्रबल वैदिक साक्ष्य के होते हुए यह कहना कि मूर्तिपूजा का पचड़ा जैनियों का खड़ा किया हुआ है, क्या दयानन्द के अज्ञान विभ्रान्त, विमूढ़ात्मा एवं झूठे होने का अप्रतिम उदाहरण नहीं?..."

समीक्षा—वेदों में कहीं भी मूर्तिपूजा की चर्चा नहीं है। यहां तक कि उपनिषद्, गीता में भी नहीं है। मूर्तिपूजा जैनियों से ही चली है। आप कोई ऋषि, महर्षि नहीं हैं कि वेद का भाष्य बिना निरुक्त, निघण्टु, व्याकरणादि को अध्ययन किए जो मन में आया लालबुझक्कड़ के समान कर दिया। आर्यसमाज व पौराणिकों के विद्वानों के मध्य कई बार मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हो चुका है और सर्वत्र उनकी पराजय हुई है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का 'काशी शास्त्रार्थ' प्रसिद्ध ही है। वहां पर भी काशी के किसी पण्डित में वेद मंत्र प्रस्तुत करने का साहस नहीं हुआ।

---

६. "पद्मपुराणम्" द्वितीयो भाग; पृष्ठ ११८ (संवत् २०१४ वि० सन् १९५७ ई० मनसुखराय मोर, ५ कालम से, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

आपने इस मंत्र का जो अर्थ किया है वह अशुद्ध, एवं भ्रमपूर्ण है।

आपको अपने पक्ष की पुष्टि में किसी अविकृत भाष्यकार को भाष्य प्रस्तुत करना था, परन्तु आपने 'अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी' अलग पकाई है। अब मंत्र का सत्यार्थ देखिए—

**पं० क्षेमकरण दास जी 'त्रिवेदी'**—"भाषार्थ - (रात्रि) हे सुखदात्री वा दुःखहंत्री वा रात्रि रूप (प्रकृति) (सवत्सरस्य) यथावत् निवास देने वाले परमेश्वर की (प्रतिमान्) प्रतिमा (प्रतिरूप वा, प्रतिनिधि) (याम्) सर्वत्र व्यापिनी (त्वा) तुझको (उपास्महे) हम भजते हैं। (सा) वह लक्ष्मी तू (नः) हमारे लिए (आयुष्मतीम्) चिर जीविनी (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषण) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर।

भावार्थ – अनन्त परमेश्वरी प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल रूप के ज्ञान से उपकार लेकर हम अपनी सन्तान के सहित धनी, स्वस्थ और चिरंजीवी रहे।

पुनः पाद-टिप्पणी में 'प्रतिमाम्' शब्द पर "आतश्चोपसर्गे। पा० ६।३।१०६ इति प्रति+माङ् माने –अङ् 'टाप्' प्रतिनिधित्वेन निर्मीयत इति प्रतिमा। प्रतिरूपाम् प्रतिमूर्तिम्।"[७]

**पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ**—" ····· (संवत्सरस्य) संवत्सर, यजमान, गृहपति का (प्रतिमा) दूसरा स्वरूप या दूसरी मूर्ति—अर्धांगिनी के समान (उपास्महे) जानते हैं ·।"[८]

**स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड'**—"···(संवत्सरस्य प्रतिमा) संवत्सर विश्वकाल एवं वर्ष की प्रतिमान कराने वाली—प्रतिबोधका या आधाररूपा है ·।"[९]

**पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर 'विद्यामार्तण्ड'**—"······संवत्सर की प्रतिमा-तृतीय मंत्र में रात्री को संवत्सर की प्रतिमा कहा है।

संवत्सर वर्ष का नाम है। वर्ष बड़े आकार वाला है उसकी प्रतिमा यह रात्री है। प्रतिमा का अर्थ 'प्रति+मान' है अर्थात् मापने का साधन दिन रात्री या दोनों मिलकर अहोरात्र संवत्सर का माप करने का साधन है। दिन से ही वर्ष मापा जाता है।"[१०]

---

७. "अथर्ववेद भाष्यम" तृतीय काण्डम्, पृष्ठ ४५२ (सन् १९१४ ·· प्रथमावृत्तिः प्रयाग)

८. "अथर्ववेद संहिता" भाषा भाष्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १३७ (संवत् १९८९ वि० में आर्य साहित्य मण्डल लि. अजमेर द्वारा प्रकाशित द्वितीयावृत्ति)

९. "अथर्ववेद मुनिभाष्य" (तीन काण्ड पृष्ठ १८४ (नवम्बर १९७४ ई० प्रथम संस्करण, लेखक द्वारा प्रकाशित)

१०. "अथर्ववेद का सुबोध भाष्य" प्रथम भाग, पृष्ठ ४७ (संवत् १०१५ वि० द्वितीय संस्करण, स्वाध्याय मण्डल पारड़ी)

**पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक**—"···यह रात्रि क्या है ? संवत्सर—वर्ष का नपैना है। दिन और रात से ही वर्ष नापा जाता है। ३६५ दिन रात ही वर्ष भर के नपैने हैं।"[११]

संभवत: आपको आपत्ति होगी कि उपर्युक्त सभी भाष्य आर्यसमाज के विद्वानों के हैं तो मैं यहां पौराणिक पण्डितों का भाष्य भी प्रस्तुत कर रहा हूं जिन्होंने इस मन्त्र से मूर्तिपूजा नहीं मानी है।

**पारस्कर गृह्य सूत्रकार का मत—**

"यां जनां प्रतिनन्दन्ति रात्री धेनुमिषायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी नो सा अस्तु सुमंगली॥

संवत्सरस्य प्रतिमा या तांरात्रिमुपाश्महे।
प्रजां सुवीर्यां कृत्वा दीर्घामायुर्व्यश्नवै॥"[१२]

[पास्कर गृह सूत्र काण्ड ३, कण्डिका २ सू० २]

हिरण्येकेशिगृह्य सूत्र १।१७।२ और भारद्वाजगृह्य सूत्र २।२ में प्रथम मंत्र का विनियोग इसी कर्म के अन्तर्गत स्थाली पाक आहुतियों के लिए किया गया है।

**अर्थ**—आती हुई गाय के समान जिस रात्रि का लोग अभिनन्दन करते हैं, जो वर्ष की पत्नी है, वह हमारे लिए कल्याणकारिणी हो। जो वर्ष की प्रतिमा है। हम उस रात्रि की उपासना करते हैं। मैं अपनी सन्तान को वीरतायुक्त बनाकर दीर्घायु प्राप्त करूं।"

**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**—"हे रात्रे! तुम्हारी हम उपासना करते हैं। तुम हमारे पुत्रादि को चिर आयुष्य बनाओ और गवादि पशुओं से हमको सम्पन्न करो।"[१३]

शर्मा जी ने सायणाचार्य जी के भाष्य का अनुवाद किया है, पर यहां पर मूर्तिपूजा की चर्चा तक नहीं है।

**पं० अखिलानन्द शर्मा 'कविरत्न'** (पौराणिक बनने पर)—"संवत्सर की प्रतिमा रूप जिस रात्रि का हम सेवन करते हैं वह हमारे लिए प्रजा और धन दे, यहां

---

११. "सत्यार्थ-निर्णय" प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण, १४८ तुलल करो "मूर्ति पूजा-विचार" पृष्ठ ६० (प्रथमावृत्ति, शर्मा आर्य पुस्तकालय, सम्भल द्वारा प्रकाशित)

१२. पाकस्कर गृह्यसूत्र पृष्ठ ६० (पञ्चभाष्यो पेत पृष्ठ ३१८ (सन् १९१७ ई० में प्रेस, फोर्ट, द्वारा मुद्रित व प्रकाशित)

१३. अथर्ववेद सायणभाष्यावलम्बी सरल भावार्थ सहित, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८८ (सन् १९५० ई० गायत्री तपो भूमि, मथुरा द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

पर प्रतिमा शब्द मापने के अर्थ में आया है "३६० रात्रियों द्वारा वर्ष मापा जाता है।"[१३]

ऐसा अर्थ करने वाले तीन तो पौराणिक विद्वान् हैं।

अब क्या यह श्री राजेन्द्र कुमार गर्ग के अज्ञान विभ्रान्त, विमूढात्मा एवं झूठे होने का अप्रतिम उदाहरण नहीं ?

आपने जिन शब्दों से महर्षि दयानन्द जी पर पुष्प वर्षा की थी उनकी आप पर ही वर्षा कर दी है। कहिए "मियां की जूती मियां के सर" कहावत आप पर चरितार्थ हुई या नहीं ?

## क्या वेदों में छुरे की पूजा है ?

गर्ग, पृष्ठ७ —"...क्षुर पूजन का एक उदाहरण देखिए।

संवत् १९८३ की प्रकाशित 'संस्कार विधि' में दयानन्द ने 'स्वाधिते मैनं हिंसीः' इस मन्त्र का अर्थ लिखा है।

"हे छुरे! तू इस बच्चे को मत मार।" सम्वत् १९८४ में प्रकाशित 'संस्कार विधि' पर 'संस्कार-प्रकाश' नामक टीका ग्रन्थ में रामगोपाल विद्यालङ्कार ने भी उक्त मंत्र का दयानन्द के समान ही अर्थ किया है कि 'हे लोहे! इस बालक को हानि मत पहुंचना!' अब जरा सोचिए कि नाई के छुरे से यह प्रार्थना करना कि 'तू इस बालक को मत मार' क्या मूर्तिपूजा नहीं ? क्या देव पूजा नाई के छुरे से भी गयी बीती है ? क्या यह सब दयानन्द का पाखण्ड नहीं ?'

समीक्षा—गर्ग जी ने इस प्रकरण को समझा नहीं। यदि समझते तो इस प्रकार अनर्गल प्रलाप नहीं करते। यह महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का पाखण्ड नहीं वरन् इस प्रकार अनर्थ करने वाले का पाखण्ड है। आपने पं० कालूराम शास्त्री कृत 'आर्यसमाज में मूर्तिपूजा' पुस्तिका से चोरी करके बन्दूक चलाकर आर्यसमाज रूपी दुर्ग को ध्वस्त करने का कुप्रयास किया है।

महर्षि दयानन्दजी ने अपनी संस्कारविधि 'चूड़ाकर्मप्रकरण' में लिखा है—ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि" (मं० ब्रा० १-६-४। गोभि० २.८-१०-१७) इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

यहां पर महर्षि ने कोई अर्थ नहीं किया है। उन्होंने केवल गोभिल गृह्यसूत्र का उद्धरण रख दिया है। अर्थ तो आप करते हैं और आक्षेप स्वामी जी पर या आर्य-समाजियों पर करते हैं, यह कहां की सभ्यता है ?

इसका अर्थ तो आपने किया है इसलिए आपको सम्मति दी जाती है कि यदि छुरा विष्णु की दाढ़ है तो अशुद्ध असभ्य भग-लिङ्ग की पूजा त्याग कर छुरा का पूजन

१४. "अथर्व वेदालोचन" पृष्ठ १५९ (संवत् १९७३ वि० में हिन्दी प्रेस, प्रयाग में मुद्रित व लेखक द्वारा प्रकाशित)

कीजिए। लिङ्ग से तो यह अच्छा रहेगा । बाल भी बना लो, सवेरे पूजा करके मोहन-भोग भी खालो । एक पन्थ दो काज ।

देखिये इसका अर्थ होगा—"यज्ञो वै विष्णु" (शतपथ ब्रा० १-२-१३) विष्णु नाम यज्ञ का है और 'दश्यतेऽनेनेतिदंष्ट्रः" जिससे काटा जावे उसका नाम दंष्ट्र है अतएव अर्थ हुआ 'छुरा यज्ञ में वस्तुओं को काटने का साधन है।'

आपका 'पुराण' छूरी और कुद्दाल की अवश्य पूजा बतलाता है—

सर्वसत्वांगभूतासि सर्वाशमनिवारिणी।
क्षुरके क्षुरमां नित्यं शान्ति यच्छ नमोस्तुते ।।

(भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अ० १३८)

अर्थात्—छुरी सारे प्राणियों की अंगभूत है, सारे विघ्नों को दूर करने हारी है, हे छुरी ! मेरी रक्षा कर, मुझको नित्य शान्ति प्रदान कर। तुम को नमस्कार है।

तोष्यकर्मकरा सर्वे कुद्दालानि च पूजयेत् ।।३६।।

(भविष्यपुराण उत्तर पर्व अध्याय १२७)

अर्थात् सारे काम करने वालों को संतुष्ट करे और कुद्दाली को पूजे।

आक्षेप—ओं शिवो नामासिस्वधितिस्तेपिता नमस्ते मा मा हिँसीः।

यजु० ३ मं० ६३

हे छुरे ! तू कल्याण कारी है अच्छे लोहे का बना हुआ है। तुझे नमस्ते करता हूं तू इस बच्चे को मत मार।

यहां पर छुरे की प्रशंसा और उसको नमस्ते करना और छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू इस बच्चे को मत मार, क्या अब भी छुरे का पूजन सिद्ध नहीं हुआ।

उत्तर—महर्षि दयानन्द जी ने 'संस्कार विधि' में केवल मन्त्र देकर यह लिखा है कि 'इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे।

आपने इस मन्त्र का यहां अर्थ नहीं किया है। आप अपने यजुर्वेद भाष्य में इसका अर्थ लिखते हैं—हे जगदीश्वर और उपदेश करने हारे विद्वन् ! जो आप (स्वधितः) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) हो। (ते) आपका (शिवः) सुख स्वरूप विज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं। आपके लिये मेरा (नमः) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो, तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिँसीः) मृत्यु से युक्त कीजिए। और मैं आपके (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (प्रजननाय) सन्तानोत्पादन करने (सुप्रजस्त्वाय) उत्तम-उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्याय) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिए आप आश्रय से सब दुःखों को (निवर्त्तयामि) दूर करता वा कराता हूं।

आप को उचित था कि महर्षि दयानन्द जी के इस अर्थ पर आक्षेप करते पर आपने जो अर्थ किया है वह वाममार्गी महीधर का अर्थ है, इसलिये छुरे को नमस्कार का उत्तर आपको देना पड़ेगा ?

श्री महीधराचार्य का अर्थ — 'शिवो नामेति लोहक्षुरमादायेति । हे क्षुर त्वं नाम नाम्ना शिवः शान्तोसि स्वधितः वज्र ते तव पिता । ते तुभ्यं नमोऽस्तु मां मा हिंसीः" ।

अर्थात्—शिवो नामासि०' यह कह कर लोहे के छुरे को ले (और कहे) हे छुरे तू नाम से शिव=शान्त है। वज्र तेरा पिता है । तुमको नमस्कार हो। मुझे मत मार।

महर्षि दयानन्द तो कहें हे जगदीश्वर ! आप मेरे पालन करने वाले हैं" और आपके माननीय भाष्यकार वाममार्गी श्री महीधराचार्य जी कहें "हे छुरे तुमको नमस्कार हो, मुझे मत मार।"

कहिये कौन छुरा (उस्तरा) पुजवाता है आप या आपके गुरु के वाममार्गी महीधर या ऋषि दयानन्द जी ?

इस प्रश्न को देखकर पता चलता है कि आप या तो नास्तिक है या मीमांसा दर्शन का स्वाध्याय नहीं किया है।

आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व आपके सरीखे नास्तिकों ने प्रश्न किया था जिसकी चर्चा मीमांसा दर्शन में है और श्री सायणचार्य जी ने अपने ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात, में इसी प्रश्न को उठा कर उत्तर दिया है । पाठकों के सम्मुख दोनों को रख देता हूं ।

प्रश्न—'ओषधे त्रायस्वैनमिति मन्त्रो दर्भविषय.' स्वधिते मैनं हिंसीरिति क्षुरविषयः शृणोत ग्रावाण इति पाषाणविषयः। एतेषु अचेतनानां दर्भक्षुरपाषाणानां चेतनवत् सम्बोधनं श्रूयते। ततो द्वौ चन्द्रमसविति वाक्यवद् विपरीतार्थबोधकत्वात् अप्रामाण्यम्, अस्योत्तरम् औषध्यादिमन्त्रे चेतना एव तत्तदभिमानिदेवता तेन तेन नाम्ना सम्बोध्यन्ते ।

भावार्थ—हे औषधे ! इसकी रक्षा कर, यह मन्त्र दर्भ के विषय में है। हे स्वधिते इसको कष्ट न हो, यह मन्त्र क्षुर विषयक है, पत्थर सुनें यह मन्त्र पत्थर विषयक है। इन मन्त्रों में चेतन के समान सम्बोधन देखा जा रहा है। परन्तु जैसे दो चन्द्रमा कहने से विपरीत अर्थ का बोध होने के कारण इस वाक्य की प्रामाणिकता नहीं है उसी प्रकार जड़ को सम्बोधित करना भी आयुक्त है। इसका उत्तर सायणाचार्य जी देते हैं कि औषध्यदि मन्त्रों में जड़ औषधि आदि के सम्बोधन से उन पदार्थों के अभिमानी चेतन देवता × का सम्बोधन ग्रहण होता है। अर्थात् जड़ का सम्बोधन नहीं समझना

× अभिमानी देव मन्त्र में जिसका वर्णन हो वही मन्त्र का देवता होता है। मन्त्र में वपन का वर्णन है इसलिए क्षुर से क्षुर के अभिमानी नापति का ग्रहण होता है।

किन्तु उसके ग्रहण करने वाले चेतन देवता का ग्रहण होता है। अब कर्म काण्ड पक्ष में मन्त्र का अर्थ यों हुआ—

'हे क्षुर अर्थात् क्षुराभिमानी नापति तेरा नाम शिव है। स्वधिति (छुरा) + तेरा पालक है अर्थात् छुरे से तेरी जीविका है इसलिए इसको घाव न लगे।

## महर्षि दयानन्द जी के विमल चरित्र पर कलंक ?

गर्ग पृष्ठ ७···भला कोई बुद्धिमान् मनुष्य सोचे कि दयानन्द अपने तीन महीने के मेरठ प्रवास में तीन सप्ताह तक रमाबाई वेश्या को अपने पास क्यों रखा और उसे विदा करते समय एक सौ पच्चीस रुपए और एक दस रुपए का थान किस चीज के प्रतिदान में दिया ?···क्या इससे यह निर्विवाद सिद्ध नहीं होता कि दयानन्द वेश्या-गामी, परस्त्रीगामी और व्यभिचारी था ?···

समीक्षा—गर्ग जी ने श्री नरेन्द्र कुमार जैन की "आर्यसमाज की पराजय" पुस्तिका के आधार पर महर्षि दयानन्द जी के विमल चरित्र पर कलंक लगाने का दूषित प्रयास किया हैं। क्या जैन व गर्ग जी की दृष्टि में कोई विदुषी महिला वेश्या दृष्टिगोचर होती है ? यह तो आप दोनों के कलुषित हृदय के उद्गार है। महर्षि दयानन्द जी को वेश्यागामी, व्यभिचारी लिखते लज्जा नहीं आई, लेखनी टूट नहीं गई ?

पौराणिकों ने किस ऋषि को छोड़ा है सभी पर कुछ न कुछ कलंक लगाया है। अठारह पुराणों को पढ़कर देखें।

"रमाबाई कर्नाटक (मैसूर राज्य) के एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण की लड़की थी। संस्कृत की विदुषी थी। वह एक बंगाली कायस्थ के साथ प्रणय-सूत्र में बंधना चाहती थी। माता-पिता ने पौराणिक होने के कारण उसे त्याग दिया था। स्वामी जी ने जब उसकी विद्या की ख्याति सुनी तो उससे पत्र-व्यवहार किया कि यदि वह ब्रह्मचारिणी रह कर देश की स्त्रियों में वैदिक धर्म का प्रचार कर सके तो आर्यसमाज उसके मार्ग-व्यय तथा निर्वाह का प्रबन्ध कर सकता है। उसके व्याख्यान सुनने के लिए उसे मेरठ बुलाया। जब वह मेरठ आई तो उसके साथ एक स्त्री तथा दो पुरुष थे जिनमें श्री विपिन बिहारी एम. ए., वी. एल. बंगाली महाशय भी थे जिनसे रमाबाई विवाह करना चाहती थी। उसे मेरठ शहर के अन्दर पृथक् स्थान में बाबू छेदीलाल के बंगले में ठहराया गया। स्वामी जी शहर के बाहर बाटिका में ठहरे थे। स्वामी जी के पास पांच-छ: शिष्य सांख्यादि दर्शन पढ़ते थे। उन्हीं में बैठकर कई दिन तक रमाबाई ने भी वैशेषिक दर्शन का अध्ययन किया। शहर में रमाबाई के कई दिन व्याख्यान हुए। जब स्वामी जी के उपदेश से रमाबाई भारत की स्त्रियों में प्रचार करने को सहमत न हुई तो

+ देखो महीधर भाष्य अध्याय ४ मन्त्र १ जिस मैं 'स्वधति' का अर्थ क्षुर किया गया है। पिता पालक: पौलियता ऋ० १-३१-१० श्री सायणाचार्य:।

मेरठ समाज ने उसे १२५ रु. मार्ग व्यय तथा १० रु. मूल्य के वस्त्र देकर विदा कर दिया। स्वामी जी ने स्वरचित पुस्तकों –सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि आदि का एक सेट रमाबाई को भेंट किया।"

जो वृत्तान्त मैंने लिखा है वह पं० लेखराम जी कृत "महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र +" पृष्ठ ५४७ से एकदम मिलता है।

इस घटना में स्पष्ट लिखा है कि वह अकेली नहीं थी। उसके साथ एक स्त्री तथा दो पुरुष थे। श्री छेदीलाल के बंगले में महर्षि दयानन्द जी के निवास-स्थान से दूर ठहराई गई थी ऐसी स्थिति में महर्षि दयानन्द जी के विमल चरित्र पर कीचड़ उछालते हुए आप लोगों को शर्म भी नहीं आई। धिक्कार है ऐसे दार्शनिक विद्वान् की जो ऐसी गन्दी बातें लिखता है। क्या जैन व गर्ग जी को इलहाम हुआ था कि उन्होंने दुराचार किया था ?

महर्षि दयानन्द जी ने अपने पास से केवल अपनी पुस्तकों का एक सेट दिया था। मार्ग व्यय व वस्त्र आर्यसमाज मेरठ की ओर से प्रबन्ध किया गया था। आप दोनों लाल बुझक्करों ने स्वामी जी की ओर से देना लिखा है जो सरासर मिथ्या व शरारतपूर्ण है।

श्री शंकर दिग्विजय में आया है कि मंडन मिश्र जी शास्त्रार्थ के समय उनकी पत्नी भारती ने मध्यस्थता की थी। क्या गर्ग जी उसी प्रकार कुकल्पना करेंगे कि आद्य श्री शंकराचार्य जी का भारती के साथ घृणित सम्बन्ध था ?

शिवजी भील की कुटिया में भील की स्त्री के साथ एक रात अकेले रहें (शिव पुराण, शत रुद्र० अ० २७)।

क्या ऐसे महापुरुषों पर घृणित कल्पना करना दुष्टता नहीं होगा ?

रमाबाई ने कभी भी अकेली महर्षि दयानन्द जी से भेंट न की। उनके पास हर समय जिज्ञासु व श्रद्धालु जनों का आना-जाना लगा रहता था।

यदि महर्षि जी में किंचिन्मात्र भी कुनीति होती तो तत्कालीन आर्य लोग ही आक्षेप करते। अतः गर्ग जी की कुकल्पना असंभव, ईर्ष्या तथा दुष्टतापूर्ण है। आप लोग अपने देवी-देवताओं पर कलंक लगाने में न चूकें—

"स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णु देवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्।"

[भविष्य पुराण, प्रति सर्ग खण्ड ४, अ० १८ श्लोक २९]

---

+ कविराज रघुनन्दन सिंह 'निर्मल' द्वारा उर्दू से अनुवादित तथा संवत् २०२८ वि० में आर्यसमाज, नयाबांस, दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार द्वारा सम्पादित।

अर्थ—ब्रह्मा ने अपनी लड़की, विष्णुदेव ने अपनी माता और भगवान् शम्भू ने अपनी बहन को भार्या बनाकर श्रेष्ठ पद को प्राप्त किया।

श्रीमद्भागवत महापुराण ९।२० श्लोक ३६ से ३९ तक कथा आई है कि बृहस्पति ने अपने अग्रज उतथ्य की धर्मपत्नी ममता से गर्भावस्था में ही बलात्कार किया। श्री मद्भागवत महापुराण ९।१४ व देवी भागवत पुराण १.११.६-१० में लिखा है कि—चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को हठात् छीन लिया। उससे बुध उत्पन्न हुआ जिसे चन्द्रमा ने रखा।

पद्म पुराण, पातालखण्ड अ० ७४ में यह आता है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अर्जुनी बनाकर उसके साथ रमण किया।

पराशर ऋषि ने केवट कन्या सत्यवती से नाव में संभोग किया जिससे व्यास जी उत्पन्न हुए। 'शिव पुराण' उमाखंड, अ० ४४ श्लोक १२-१८

गर्ग जी अपने वक्षस्थल पर हाथ रखकर विचार करें कि पराशर, शंकर, ब्रह्मा प्रभृत्ति वेश्यागामी थे या महर्षि दयानन्द जी थे?

आप इन पुराणों को अक्षरशः सत्य मानते हैं आर्यसमाजी तो परतः प्रमाण मानते हैं।

अतः आपका लेख प्रमत्त-प्रलाप के सदृश है।

### 'गर्ग' जी की योग्यता?

गर्ग जी एम. ए., पी. एच. डी. का दुमछल्ला लगाते हैं पर आपको एक शब्द भी लिखने की योग्यता नहीं है। देखिए—'प्राक्कथन' में चौथी पंक्ति में 'भर्त्सना' शब्द लिखते हैं।

क्या 'भर्त्सना' शब्द सही है या अशुद्ध है? व्याकरण, संस्कृत कोषों के अनुसार नितान्त अशुद्ध है।

आप जैनमत की बहुत हिमायत करते है और आपकी पुस्तक के प्रकाशक भी जैनी हैं। श्री अमरसिंह जी भी जैनी थे उन्होंने लिखा है—"पारुष्यमतिवादः स्याद् भर्त्सनं त्वपकारगीः।" [अमर कोष, प्रथम काण्ड, शब्दादिवर्गः ६, श्लोक १४]

पं० विश्वनाथजी व्याकरणाचार्य कृत टीका—"...भर्त्सनम् (भर्त्सयते, ल्युट्), अपकारगीः (अपकारार्थागीः) में दो नाम फटकारने के हैं जिनमें प्रथम नपुं० द्वितीय स्त्रीलिंग है।[१४]

पाद टिप्पणी में लिखते हैं—"चोरोऽसि घातायिष्यामि त्वाम् इत्यादि भर्त्सना गीः।"[१५]

---

१४. "अमर कोष, प्रथम काण्ड, सुधा संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतः" पृष्ठ ६१ [सन् १९७५ ई० में मोतीलाल बनारसदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित, पंचम संस्मरण]

१५. वही, पृष्ठ ६१

**पं० वामन शिवराम आप्टे** लिखते हैं—'भत्सर्सना, भर्त्सितम् [भर्त्स+ल्युट्, स्त्रियां टाप् क्त वा]...[16]'

**पं० तारिश झा** 'व्याकरण-वेदान्ताचार्य' तथा चतुर्वेदी **पं० द्वारिका प्रसाद** शर्मा एम. आर. ए. एस. लिखते हैं—

"भर्त्सन—(न०), भर्त्सना—(स्त्री०), भर्त्सित—(न०) [√भर्त्स्+ल्युट्] [√भर्त्स्+णिच्+युच्—टाप्] [√भर्त्स्+क्त] डाँट-डपट।.. धमकी।[17]

संस्कृत के चार विद्वान् व्याकरण के अनुसार 'भर्त्सना' शुद्ध मानते हैं और आप 'भत्स्नी' लिखकर अपनी अयोग्यता प्रकट कर रहे हैं।

इसी प्रकार महत्ता शब्द के स्थान पर 'महानता' लिखना भी गर्ग जी की मूर्खता सिद्ध करता है।



## बौद्ध मत की मिथ्या वकालत

गर्ग, पृ० ८. "बौद्ध...'बुद्ध्या निर्वर्त्तते स बौद्धः' जो बुद्धि से सिद्ध हो अर्थात् जो-जो बात अपनी बुद्धि में न आवे उस-उसको नहीं माने...क्या दयानन्द के सिवाय अन्य कोई विद्वान् इस व्याख्या को उचित कहने का दुस्साहस कर सकता है?"

समीक्षा—'बौद्ध' की परिभाषा महर्षि दयानन्द जी ने सही लिखी है। यदि सही नहीं है तो व्याकरण का या अन्य किसी लेखक का प्रमाण देकर अशुद्ध सिद्ध करना चाहिए।

**पं० तारणीश झा व्याकरणाचार्य** भी लिखते हैं—

"बौद्ध—(वि०) [स्त्री०—बौद्धी] [बुद्धि+अण्] बुद्धि या समझ से संबंध रखने वाला।"[1]

झा जी भी तो मान रहे हैं कि 'बुद्धि या समझ से सम्बन्ध रखने वाला' यह अर्थ महर्षि दयानन्द जी के समान कर रहे हैं।

गर्ग, पृ० ८ "दयानन्द बौद्धों के चार सम्प्रदायों के विषय में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं—'यद्यपि इनका आचार्य बुद्ध एक हैं तथापि शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार की शाखा हो गई है जैसे सूर्यास्त होने से जारपुरुष परस्त्री गमन और विद्वान् सत्य भाषाणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। समय एक परन्तु अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न-भिन्न चेष्टा करते हैं।

---

१६. 'संस्कृत हिन्दी कोश' पृष्ठ ७३२ [सन् १९६६ ई० से मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाकित]

१७. 'संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ' पृष्ठ ८४७ [सन् १९७५ में रामनारायण बेनीप्रसाद, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता इलाहाबाद-२ द्वारा प्रकाशित, पंचम संस्करण]

१८. वही, पृष्ठ ८३१ तुलनाकारो 'आप्टे' कृत 'संस्कृत हिन्दी कोष' पृष्ठ ७२१

जरा दयानन्द की उपमा का कौशल तो देखिये कि उन्होंने असंग, वसुवन्ध··· विद्वानों को अपनी कलम की लकीरमात्र से परस्त्री गामी बना दिया ! वाह रे दयानन्द! ···इस उपमा से दयानन्द की मानसिक एवं चारित्रिक स्थिति को बखूबी समझा जा सकता है।"

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी के ऊपर आक्षेप करने के पूर्व बौद्ध दर्शन देख लेते तो इस प्रकार अनर्गल प्रलाप नहीं करते। मेरठ कालेज में दर्शन के प्राध्यापक हैं पर दर्शन शास्त्र का कख भी नहीं आता है।

यह उपमा महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की अपनी नहीं है। उपर्युक्त वाक्य "सर्वदर्शन संग्रह" से 'बौद्ध प्रकरण' के निम्नलिखित वाक्य का अनुवाद है—

"यद्यपि भगवान् बुद्धः एक एव बोधयिता तथापि बोद्धव्यानां बुद्धिभेदाच्चा—तुर्विध्यम्। यथा गतोऽस्तमर्क इत्युक्ते जारचोरानू चानादयः स्वेष्टानुसारेणाभिसरण—परस्वहरणसदाचरणादिसमयंबुध्यन्ते।"

अतः महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करना मूर्खता व शरारतपूर्ण है। क्या महर्षि दयानन्द की मानसिक एवं चारित्रिक स्थिति समझने की योग्यता आप में है ? क्या यह आक्षेप आप 'सर्वदर्शन संग्रहकार' पर करेंगे ?

बौद्धों की वकालत करते हुए गर्ग जी पर उन्हीं के शब्दों में दुराग्रह, हठ, अज्ञान, महाभ्रान्ति का द्योतक है या नहीं ?

**वैष्णव सम्प्रदाय की झूठी वकालत**

**वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक नीच वर्ण के थे।**

गर्ग, पृष्ठ ९—"दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास के वैष्णव मत समीक्षा-प्रकरण में लिखा है—

"राजा भोज के डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णव मत का आरम्भ हुआ। एक शठ-कोप नामक कंजर वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उससे थोड़ा-सा चला। उसके पश्चात् मुनिवाहन भंगी कुलोत्पन्न और तीसरा माधवाचार्य यवन कुलोत्पन्न आचार्य हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ।" इस विषय को आगे बताते हुए पुनः कहते हैं—"प्रथम इनका मूल पुरुष 'शठकोप' हुआ जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है, उनमें लिखा है—'विक्रीय शूर्पं विचचार योगी।'···शठकोप योगी सूप (छाज) को बना बेचकर विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था। —"उसका चेला मुनिवाहन जो कि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उसका चेला यावनाचार्य जो कि यवन कुलोत्पन्न था।" ·· शठकोप को कंजर वर्णोत्पन्न मुनिवाहन को भंगी एवं चाण्डालकुलोत्पन्न तथा यामुनाचार्य को यवन कुलोत्पन्न बिना किसी साक्ष्य के कहना दयानन्द का दुस्साहस ही माना जायेगा। वेदों में

केवल चार वर्णों का उल्लेख है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, किन्तु दयानन्द ने अपनी कलम से पांचवां वर्ण 'कंजर वर्ण' एवं छठा वर्ण चाण्डाल वर्ण और ईजाद कर दिए। बोलो, है कोई धरती पर दयानन्द का चेला जो यह सिद्ध करे कि 'कंजर वर्ण' एवं चाण्डाल वर्ण वेद-विहित वर्ण है? क्या कोई दयानन्द का अनुचर मुनिवाहन को भंगी और चाण्डाल, शठकोप को कंजर और यमुनाचार्य को म्लेच्छ अथवा मुस्लिम सिद्ध करने का सामर्थ्य रखता है? यदि रखता हो तो सामने आए अन्यथा यह कहना पड़ेगा कि दयानन्द ने वैष्णवों को झूठी गालियां दी हैं …।"

समीक्षा—राजा भोज के १५० वर्ष के पश्चात् वैष्णव मत का आरम्भ हुआ।

इसकी पुष्टि में **श्री एच० राय० गुप्त**, सहारनपुर लिखते हैं—

"वैष्णव मत—इस मत का उभार शैवमत के विरोध में राजा भोज से लगभग १५० वर्ष पश्चात् शठकोप नामक कंजराचार्य ने किया था। नके पश्चात् उनके शिष्य मुनिवाहन और यवनाचार्य ने उस मत का प्रसार किया। इन सबके पश्चात् १०३७ ई० रामानुजाचार्य ने इसमें चारचांद लगा दिए…।" [१९]

गुप्त जी आर्यसमाजी नहीं हैं।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वैष्णव सम्प्रदायों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है। अक्षरशः सही व प्रामाणिक हैं। गर्ग जी ने तो पं० कालूराम शास्त्री कृत "आर्य समाज की मौत" पुस्तक की नकल करके आक्षेप कर दिया है। उनको स्वयं तो ज्ञान नहीं है।

मैं पौराणिकों के लेखों से भी प्रदर्शित करता हूं कि उनका लेख सही है—

**शठकोप**—शठकोप यदि कंजर नहीं थे तो किस ब्राह्मण कुल से उत्पन्न हुए थे यह सिद्ध करना था।

**श्री निवासाचार्य जी लिखते हैं—**

अस्ति पूर्वपयोराशेः कापि पश्चिमरोधसि।
मण्डले पाण्ड्यभूपस्य नगरी कुरुकाह्वयं।
तत्रासीत्पादजातेषु कश्चिद्भागवताग्रणीः।
श्रीमत्पलमी हि शूद्रेन्द्रः सीमातीतगुणोल्वणः।
तस्य धर्म परो नाम तनयः समजायत।
चक्रपाणिस्ततो जातश्चक्रपाणिपरायणः।

१९. 'विश्वधर्म-परिचय' पृष्ठ २१५ [सन् १९५४ ई० में एच० राय० गुप्त, वामन जी रोड, सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित, प्रथम बार]

अजायत ततस्तस्माद् रत्नमयेति संज्ञतिः ।
सुमतिः सुषुवे सोऽपि पुत्रं पाटललोचनम् ।
पुत्रं प्रासूत सः कारि पुत्रं पाटललोचनः ।
ततो जातः सुत तस्मात्शठकोप इतीरितः ।
तमाहुः कारिजं सन्तः शठकोपं परांकुशम् ।
वकुलाभरणाख्यं च तमेव कारिनन्दनम् ।"

[ दिव्यसूरिचरित, चतुर्थ सर्ग ]

अर्थात्—समुद्र के पश्चिम तीर पर पांड्यभूषण के राज्य में एक कुरुका नाम की नगरी थी। वहां कोई भागवताग्रणी: पादजातेषु था। श्रीमत्पल्ली गुणों में दृढ़ शूद्रों का स्वामी उसका धर्मपरायण नाम का पुत्र हुआ। उस चक्रपाणि से चक्रपाणि परायण उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र संत शठकोप, परांकुश, वकुला भरण और उसी को ही कारिनन्दन कहते हैं।

पुनः—"विचक्षणो विश्व विमोह हेतोः कुलोचिताचार कुलानुषक्तः ।
पुण्ये महीसारपुरे विधायविक्रीय शूर्पं विचचार योगी ।"

[ दिव्य सूरि चरित, सर्ग २, श्लोक ४२ प्रपन्नामृत पृ० ७६।१८ ]

अर्थ—"अपने पैतृक कुल के अनुसार आचार और कला में लगे हुए सब प्रकार से चतुर योगी भक्तिसार (शठकोप) विश्व को मोहित करने के लिए पवित्र महीसार पुर में शूप (छाज) बनाकर वेचते थे।"

**श्री स्वामी देवेन्द्राचार्य जी शास्त्री**—विद्यारत्न, अयोध्या अपने "श्री सम्प्रदाय" शीर्षक लेख २० में लिखते हैं—

"…वैसे शठकोपादि वेचारे शूद्र होने के कारण अपनी भाषा में वाणी साखी की भांति पद बनाते।…"

**पं० बलदेव उपाध्याय**—एम० ए० साहित्याचार्य, लिखते हैं—

"…प्रसिद्ध 'आलवारों' में अनेक नीच जाति के पुरुष थे। सबसे प्रसिद्ध नम्मालवार (शठकोपाचार्य) अद्भुत जाति के थे।…"[२१]

---

२०. मासिक पत्र "सन्त" जयपुर, वर्ष ४, जुलाई × अगस्त सन् १६४३ ई० अंक १, २, पृष्ठ ५३.

२१. "भारतीय दर्शन" पृष्ठ ४७६ (सन् १६४२ ई० में पं० गौरी शंकर उपाध्याय जतनवर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

**पौराणिक पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री** लिखते हैं—

"इसी श्री सम्प्रदाय में एक स्वा० शठकोप जी हुए हैं। आप भी जाति के शूद्र थे। इनके कुल में सात पीढ़ी से वैष्णवता चली आती थी। भूतिनाथ से लेकर कारि तक सात पीढ़ी होती है। कारि आपके पिता और नाथ नाभिका आपकी माता थी।

"भूतिनाथेन्द्रमारभ्य कार्यन्तं ये मयोदिताः।
सप्तैवैते महाभागा भगवद्भक्ति पारगाः॥

अर्थात्—भूतिनाथ से लेकर कारि पर्यन्त सप्त पुरुष होते हैं, ये सातों ही बड़े भगवद्भक्त थे। इन्हीं कारि महात्मा के शठकोप स्वामी का जन्म हुआ है।

"आदौ कलेर्हि कुरुकापुरि पांड्यादेशे,
वैशाखमासि मद्यवानल मेंशजातम्।
सेनापतेः पद्जकारि गृहेऽवतीर्णं,
श्री शास्पदं शठरिपुं शरणं प्रपद्ये।" (प्र० १०३।५७)

अर्थ—कलियुग के आदि में पाण्ड्य देश में जो कारि शूद्र के गृह में उत्पन्न हुए उन शठकोप स्वामी की मैं शरणागत होता हूं। इन शूद्र महात्मा शठकोप की भगवत्मंदिर में प्रवेश का अधिकार था या नहीं, इसकी तो चर्चा ही क्या है। स्वयं विष्णु भगवान् इनको दर्शन देने आए थे।

"तस्मिन् काले शठारतेः प्रत्यक्षमगमत् हरिः।
वैनेतयं समारुह्य, श्रीभूनीलादिशोभितः॥
—(प्र० १०४।३०।३२)

अर्थात्—भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर आरुढ़ होकर अपनी श्री आदि विभूतियों सहित इन शूद्र महात्मा शठकोप स्वामी को गुरुकुल में दर्शन दिया। इन शूद्र महात्मा ने चारों वेदों को पढ़कर चार प्रबन्ध (ग्रन्थ) बनाएं हैं।…"[२२]

पुनः—"…इन शठकोप स्वामी को ही स्वामी दयानन्द ने कंजर वंशोत्पन्न लिखा है।"[२३]

---

२२. "सनातन धर्म शास्त्रीय अछूतोद्धार निर्णय" पृष्ठ ७७, ७८ (संवत् १९८८ वि० श्री सनातन धर्म पुस्तक भवन, चाह इन्दारा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

२३. वही, पृष्ठ ८०-८१.

**बेथर निवासी पं० शिवशंकर मिश्र** लिखते हैं —"चक्रांकित—इस मत का मूल पुरुष कंजर जाति का शठकोप नामक एक मनुष्य था। वह सूप बनाकर निर्वाह करता था।..."[२४]

एक उदाहरण 'सनातन धर्म मार्तण्ड' (जिसको शाहजहां पुर की धर्म सभा ने ज्येष्ठ शुक्ल संवत् १९३५ में प्रकाशित किया। से उद्धृत किया जाता है। जिससे पाठकों को प्रतीत होगा, कि उस समय भी लोगों ने कार्यवशात् बिना परिश्रम के ही चण्डाल आदि को शुद्ध कर मठाधीश और आचार्य बनाये।

करीबन सात सौ वर्ष हुए कि रामानुज सम्प्रदाय चले। रामानुज सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य षट्कोपतीर्थ थे। वे जाति के कंजर थे यह उन्हीं के ग्रन्थों में से दिव्य सूरि प्रभा दीपिका के चतुर्थ सर्ग में लिखा है—

विक्रीयसूर्पं विचचार योगी।

योगी षट्कोपणी सूप बेचकर विचरते हुए। इस वाक्य से उनकी जाति का निश्चय होता है। और उनका टोप आज तक उनके सम्प्रदाय वाले पूजते हैं।"[२५]

**पं० परशुराम चतुर्वेदी एम० ए० एल-एल० बी०** बालिया लिखते हैं—"आडवारों में सर्व प्रसिद्ध नाम का शठकोप एक शूद्र परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके जन्म के समय उनके माता-पिता ने उनका भयानक रूप देखकर उन्हें मरण, नाम देकर उनका परित्याग भी कर दिया था...।"[२६]

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य क्षेत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ-सकल निगमागम शास्त्र निष्णात स्वामी महेश्वरानन्द गिरि महामण्डलेश्वर जी महाराज लिखते हैं—'एवं श्रीरामानुजाचार्य संप्रदायेऽपि 'पल्ली' संज्ञकस्य शूद्रस्य कुले जातः शठकोपः, स च गुण-कर्मभ्यामेव ब्राह्मण्यमधिगत्य श्री वैष्णव सम्प्रदायस्य परमाचार्यः संवृत्त इति दिव्यसूरि

२४. "भारत का धार्मिक इतिहास" पृष्ठ ३३५ (संवत् १९८० वि० में श्री रिसवदास दाहिती, 'दुर्गा प्रेस' और आर० डी० वाहिती एण्ड को०, नं० ४ चोर बागान, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथम प्रथम बार)

२५. "महत्ता पं० रामचन्द्र जी शास्त्री आर्योपदेशक कृत" "पतितों की शुद्धि सनातन है।" पृष्ठ ५३ से उद्धृत (संवत् १९६६ वि० सन् अक्तूबर १९०७ ई० में श्रीमती आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर द्वारा प्रकाशित, प्रथम बार)

२६. "उत्तरी भारत की संत-परम्परा" पृष्ठ ८२ (संवत् २०८० वि० में भारती-भंडार लीडर प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

चरित्रचतुर्थ सर्गोक्त वचनैरतत् विदितं भवति। 'श्रेष्ठ: श्री वैष्णयाचार्य्य:' 'शठकोपों' ऽन्त्यजात्मज: । जन्म कर्म विशुद्धानां ब्राह्मणनामभूद् गुरु: ।'...[27]

अर्थात्—"श्री रामानुजाचार्य सम्प्रदाय में भी 'पल्ली' नामक शूद्र के कुल में शठकोप उत्पन्न हुए। वे गुण, कर्म से ब्राह्मण्य अधिकार प्राप्त कर श्री वैष्णव सम्प्रदाय के परमाचार्य हुए यह 'दिव्य सूरि चरित्र' चतुर्थ सर्ग के वचन से विदित होता है। श्रेष्ठ श्री वैष्णवाचार्य शठकोप अन्त्यज थे। जन्म कर्म से विशुद्ध ब्राह्मणों के गुरु हुए।"

'अक्षर विज्ञान' के सम्पादक पं० रघुनन्दन शर्मा, साहित्य भूषण, अनुसन्धान कर्त्ता लिखते हैं—"...इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए नीच कुलोत्पन्न शठकोपाचार्य आदि साधु पुरुष उद्योग कर रहे थे।'[28]

गर्ग जी ने 'कंजर' व चाण्डाल वर्ण का आविष्कार करना महर्षि दयानन्द जी को बतलाया है।

'कंजर' को ही 'शूद्र' कहा जाता है। गर्ग जी को इतनी छोटी बात ज्ञात नहीं और महर्षि दयानन्द जी को गाली देते हैं।

**देखिए—**

"येन केन चिदङ्गेन हिंस्याचेच्छ्रेष्ठमन्त्यज: ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥"

(मनुस्मृति ८।२७९)

इस श्लोक में 'अन्त्यज' शब्द आया है। इसका अर्थ मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकारों ने 'शूद्र' ही क्या है।

**पं० कुल्लूक भट्ट जी**—"अन्त्यज: शूद्रो येन केनचित्कर..."

अर्थात्—शूद्र जिस किसी अंग (हाथ आदि) से द्विजाति को मारे (ताडित करे); राजा उसके उसी अंग को कटवा डाले, यह मनु का आदेश है।"[29]

२७. "चातुर्वर्ण्य-भारत-समीक्षा" (संस्कृत), पृष्ठ ४६ (वि० संवत् २०२० सन् १९६३ ई० में स्वामी कैवल्यानन्द सरस्वती, सूरत गिरि बंगला मठ के कोठारी, कनखल द्वारा प्रकाशित)

२८. "वैदिक सम्पति" पृष्ठ ५११ (संवत् १९९६ वि० में सेठ शूर जी वल्लभदास वर्मा, कच्छकेसल, सेंडहर्स्ट ब्रिज, बम्बई ४ द्वारा प्रकाशित, द्वितीयावृत्ति).

२९. "मनुस्मृति. 'मन्वर्थ मुक्तावली' टीका सहित 'मणि प्रभा' हिन्दी व्याख्योपेता" पृ० ४२५ (संवत् २०२६ वि० सन् १९७० ई० में चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण)

मनुस्मृति के प्रचीन भाष्यकार पं० मेधातथि जी—

"अन्त्यज: शूद्रश्चण्डाल पर्यन्त: । श्रेष्ठ: त्रैवार्णिक: ।"...[३०]

अर्थात्—अन्त्यज शूद्र, चण्डाल पर्यन्त । तीन वर्ण श्रेष्ठ ।"

पं० मेधातिथि जी ने 'अन्त्यज' का अर्थ शूद्र व चण्डाल दोनों ही किया है।

अत: गर्ग जी ने महर्षि दयानन्द जी सरस्वती पर आक्षेप करके छिछोरापन प्रकट किया है।

**अन्त्यज**—चाण्डाल आदि निम्नतम जातियों के लिए यह शब्द प्रयुक्त है। मनु (८।२७९) ने इसे शूद्र के लिए भी प्रयुक्त किया है। स्मृतियों में इसके कई प्रकार पाए जाते हैं। अत्रि (१९९) ने अन्त्यजों के नाम लिए हैं, यथा रजक (धोबी) चर्मकार नट, (नाचने वाली जाति, दक्षिण में यह कोल्हाटि के नाम से विख्यात है) बुरुड (बांस का काम करने वाला), कैवर्त (मछली मारने वाला), मेद, भिल्म ।..."[३१]

**मुनिवाहन**—गर्ग जी या किसी वैष्णव को इनको जन्मना ब्राह्मण सिद्ध करना चाहिए था। क्या गर्गजी या कोई पौराणिक है जो मुनिवाहन को ब्राह्मण सिद्ध कर सके।

## मुनिवाहन जी का वास्तविक वर्ण —

**पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य**—"तिरुप्पन (मुनिवाहन, योगवाहन) जाति सें अछूत थे, पर भक्ति में पहुंचे हुए भक्त थे।"[३२]

**पं० क्षितिमोहन सेन** शास्त्री, एम. ए. [आचार्य, विद्याभवन, विश्वभारती, शान्ति निकेतन] लिखते हैं—"नाम्मालवर या मुनिवाहन, अस्पृश्य जाति के थे।"[३३]

**पं० गंगाप्रसाद शास्त्री** लिखते हैं—"एक आचार्य मुनिवाहन हुए हैं, जो चण्डाल कुय में उत्पन्न हुए सुने जाते हैं। ये भगवान् के मंदिर के सहन में भारी (बुहारी) दिया करते थे।"[३४]

---

३०. मनुस्मृति: (मेधातिथि भाष्य-समलङ्कृता:) उत्तरार्धम्, पृष्ठ ८२७ (संवत् २०२८ वि० सन् १९७१ ई० में श्रीमनसुखराय मोर, ५ कलाइव रो, कलकत्ता १ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करणम्).

३१. महामहोपाध्याय डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे एम. ए., एल. एल. एम. लिखित व पं० अर्जुन चौबे काश्यप एम. ए. द्वारा हिन्दी में अनुवादित 'धर्मशास्त्र का इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ १२५ [हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

३२. 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ ४८१

३३. 'भारत वर्ष में जातिभेद' पृष्ठ २०३ [अक्तूबर १९४० ई० में अभिनव भारती ग्रन्थमाला, १७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथम बार]

३४. 'सनातन धर्मशास्त्रीय अछूतोद्धार निर्णय' पृष्ठ ७७

"दूसरे आचार्य मुनिवाहन हुए यह आचार्य जाति के **चण्डाल** थे। इनकी भी कथा उनके ग्रन्थों में लिखी है।"[३५]

अयोनि संभवो जातो वेदान्ती मुनिवाहनः
पश्चात् पञ्चम वर्णे तु ववृधे बालभावितः"

['भक्ति सार' पृष्ठ ९६, ९७][३६]

अर्थात्—'वेदान्ती मुनिवाहन अयोनिज उत्पन्न हुए। पश्चात् पंचम वर्ण में...।'

"श्री मुनिवाहन (तिरुप्पनालवार) – तिरुप्पनालवार जाति के अन्त्यज माने जाते थे...।"[३७]

**स्वामी महेश्वरानन्द गिरि महामण्डलेश्वर**—"अन्ये च कतिपये भक्तिसार-परकाल-मुनिवाहनादयः श्री वैष्णवाचार्याः शूर्पकार-भिल्ल-वेणुकाराद्यवरजाति कुल जन्मान एव श्रूयन्ते।"[३]

अर्थात्—"दूसरे भी कई भक्तिसार, परकाल, **मुनिवाहन** आदि श्री वैष्णवाचार्य शूर्पकार, भिल्ल, वेणुकार आदि कुल में उत्पन्न हुए ऐसा सुना जाता है।

**यवनाचार्य (यमुनाचार्य) का वास्तविक वर्ण**—यवनाचार्य ब्राह्मण नहीं वरन यवन थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती का लिखना सत्य है।

'दक्षिण में 'तोतादरी' और रंग जी दो स्थान हैं वहां एक चण्डाल चुराकर (चोरी से) मन्दिर के सहन में बुहारी (झाड़ू) दे जाता था।

एक दिन पुजारी लोगों ने जाना तो उसको बहुत मारा और बाहर निकाल दिया। पुनः एक पुजारी ने कहा कि मुझे एक स्वप्न भया है, कि उसी चण्डाल को अपना अधिष्ठाता बनाओ। सब लोगों ने उसका नाम मुनिवाहन रखा। उसका चेला **मुसलमान** भया उसका नाम **तिवतयामुनाचार्य** रखा। उनके चेले महापूर्ण और तिनके चेले रामानुज भये।" (देखो 'सनातन धर्ममार्तण्ड, पृ० १८७)[९]

यवनाचार्य 'शेख' मुसलमान थे।

---

३५. 'सनातन धर्म मार्तण्ड' [पतितों की शुद्धि सनातन है पृष्ठ ५३]

३६. वे० शा० स्वामी वेदानन्द तीर्थ द्वारा टिप्पणी सहित 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ २६२ की पाद-टिप्पणी, [संवत् २०१३ वि० में विरजानन्द वैदिक संस्था, छोटा खेड़ा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

३७. मासिक पत्र 'कल्याण' गोरखपुर का 'भक्त चरितांक' वर्ष २६, जनवरी १९५२ ई. सौर माघ २००८ वि०, संख्या १, पृष्ठ ३१८

३८. 'चातुर्वर्ण्य-भारत-समीक्षा' पृष्ठ ४५ तुलना करो पं० इन्दिरारमण शास्त्री कृत 'मनुस्मृतिः मानवार्ष भाष्यम्, प्रथम काण्डम्, पृष्ठ २४० की पाद टिप्पणी, [संवत् १९९९ वि. में काशी विद्यापीठ, काशी द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण)

३९. 'पतितों की शुद्धि सनातन है' पृ० ५४ में उद्धृत

**पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण** लिखते हैं—"मालूम होता है कि वही शेखजाति अरब में बसकर शेख हो गई। क्योंकि शेखों का अरब में वही मान है जो भारत में ब्राह्मणों का है। यह प्रसिद्ध बात है कि मुसलमान होने के पहिले वहां के निवासी अपने को ब्राह्मण ही कहते थे। अरब से ही रामानुज सम्प्रदाय का मूल प्रचारक यवनाचार्य बहुत करके यहां नवीं शताब्दी में आया था, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य का जन्म हुआ है। इनके दो सौ वर्ष पूर्व मद्रास प्रान्त में शूद्र जाति का महान् आत्याचार था।

उसी समय इस अरब देश निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न दयालु यवनाचार्य का आना हुआ। उस समय वहां महात्मा शठकोप आदि आन्दोलन कर्ताओं को यवनाचार्य ने मदद दी।"[४०]

**श्री बिलफोर्ड** ने अपने लेख में लिखा है—

But befor telling anything of thesc learned men, something need to loesaid of thab great man· Yawanacharya· He took his leirth in a Brahman family in Arabeia and was educated in the Uni-versily of Alexandria·'

(Asvutic Researhes VOL X) ×

अर्थात्—'इन विद्वान् मनुष्यों के सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व महान् पुरुष यवनाचार्य के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता है। उन्होंने अरब में एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया और इलेक्जेड्रिया के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी।'

यहां 'ब्राह्मण परिवार' से तात्पर्य 'शेख' नातक मुस्लिम जाति से है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने तो वैष्णवाचार्यों के सम्बन्ध मेंवास्तविक तथ्य लिख दिया है। गालियां तो पौराणिकों ने ही दी हैं जिनके लेखों से महर्षि दयानन्दजी के लेख की पुष्टि हो रही है।

## क्या नाभाजी डोम (डूम) नहीं थे ?

गर्ग, पृष्ठ १०—"यदि किसी आर्यसमाजी ने घाय का नही मां का दूध पिया हो तो सिद्ध करे कि नाभाजी डूम थे।

---

४०. 'वैदिक सम्पत्ति' पृष्ठ ४१७।

× द्रष्टव्य: वही, पृष्ठ ४१७ की पादटिप्पणी तथा पृष्ठ ५११ तथा 'मनुस्मृते:'—मानवार्ष भाष्य, प्रथम काण्ड, पृष्ठ २४० की पादटिप्पणी, तथा पृष्ठ ३१० की पादटिप्पणी।

वास्तविकता यह है कि दयानन्द कापड़ी थे और बाल्यावस्था में इनका काम नाचना-गाना था। विश्वास नहो तो पढ़ो जरा'दयानन्द छल-कपट-दर्पण'।……"

समीक्षा—मेरी भी चुनौती है कि गर्गजी या किसी पौराणिक ने अपनी माता का दुग्धपान किया है तो वह नाभाजी को ब्राह्मण कुल का सिद्ध करे।

नाभाजी वास्तव में डोम थे देखिए प्रमाण—

(डोम कौन है ?) "अपरार्क (पृष्ट १११७) द्वारा उद्धृत पराशर ने स्वपाका डोम्ब और चाण्डाल को एक ही स्तर पर रखा है और पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। वह अस्पृश्य और नीच जाति है।"[४१]

**पं० क्षिति मोहनसेन शास्त्री एम० ए०** शांति निकेतन लिखते हैं :—

'मध्ययुग में उत्तर भारत के कबीर, रैदास,सेना, रुदना, छन्ना, दादू, नाभा आदि सन्त भक्तों का जन्म अत्यन्त नीच कुल में हुआ था।'[४२]

सनातन धर्मी विद्वान् **पं० गंगाराम शास्त्री** लिखते हैं :—

'नाभाडोम, अष्टछाप के कृष्णदास, रांझा लकड़हारा, कबीर आदि महात्मा सब शूद्र थे। ये सर्वत्र मन्दिर में जा सकते थे।'[४३]

गोस्वामी नाभाजी कृत श्री भक्तमाल श्रीं प्रियदासजी प्रणीत टीका कवित्त श्री अयोध्या निवासी श्री सींताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला विरचित भक्ति सुधार-बाद तिलक सहित- लखनऊ सुपरिटेंडेण्ट केसरीदास सेठ द्वारा नवलकिशोर प्रेस से मुद्रित होकर प्रकाशित। दूसरी आवृति १९२६-१९८३ पृष्ठ ४७ पृष्ठ :—

'और कोई कोई तो स्वामी श्री नाभाजी का जन्म डोम वंश में भी कहते हैं… संस्कृत भक्तमाल में भी लिखा है कि—

पथि तिष्ठमंधं च शिशुमेकमपश्यताम्।
दुर्भिक्षसमये त्यक्तं जनन्या निर्जने वने ॥७।'

—भक्तमाल संस्कृत से '२।[४४]

'अर्थात् दुर्भिक्ष के समय माता द्वारा निर्जन वन में पथ में एक शिशु को देखा।'

---

४१. डॉ० निरूपण विद्यालंकार एम० ए०, पी० एच० डी० लिखित शोध प्रबन्ध 'भारतीय धर्म शास्त्र में शूद्रों की स्थिति' पृष्ठ १३६। सन् १९७१ ई० में साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण

४२. 'भारतवर्ष में जाति भेद' पृष्ठ २०४

४३. सनातनधर्म शास्त्रीय अछूतोद्धार निर्णय' पृष्ठ ८१-८२

४४ .पण्डित मनसारामजी 'वैदिक तोप' लिखित 'पौराणिक पोल प्रकाश द्वितीय भाग, पृष्ठ १२४४-१२४५ (सन् १९३६ ई० में आर्य साहित्य मन्दिर, हस्पताल रोड, लाहौर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

समालोचना सम्राट् **आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल** लिखते हैं :—

'नाभा जी को कुछ लोग डोम बताते हैं······।'[४५]

**डा०सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार** एम० ए० (त्रय), एल० टी० डी० लिट्, एम० आर० ए० एस० लिखते हैं :—

'प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल के रचयिता नाभादास भी जाति के डोम थे। लेकिन सहस्रों पण्डित और राजा महाराजा आपके शिष्य बने। आप भी प्रसिद्ध भक्त कवि और विद्वान् वैष्णव धर्मी हुए हैं।'[४६]

## महर्षि दयानन्द सरस्वती का वास्तविक वर्ण

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती को कापड़ी लिखना आपका छिछोरपन है। श्री जियालाल जैनी लिखित पुस्तक 'दयानन्द छल कपट दर्पण' आपके लिए प्रामाणिक होगा आर्य समाजियों के लिए दो कौड़ी की है। उनमें ईर्ष्या द्वेषवश महर्षि दयानन्दजी के विमल चरित्र पर कीचड़ उछाला गया है।

**पं० भगवद्दत्तजी बी० ए०** वैदिक गवेषक द्वारा सम्पादित' ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित, लिखित वा कथित 'जन्म चरित्र। चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १० में स्पष्ट लिखा है —'संवत् १८८१ के वर्ष में दक्षिण गुजरात देश काठिवाबाड़ के मजोकठा देश मोरवी का राज्य, औदीच्य ब्राह्मण के घर मेरा जन्म हुआ था।

एक नहीं सैंकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं कि महर्षि दयानन्दजी सरस्वती औदीच्य ब्राह्मण थे।

**श्रीरामलालजी** आनन्द सदन, गोरखपुर अपने विशाल ग्रंथ में लिखते हैं :—

'स्वामी दयानन्द ने गुजरात में दुर्गन्धिरा राज्य के निकटवर्ती मौरवी राज्य के टंकारा ग्राम में संवत् १८८१ बि० में एक अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल में जन्म लिया था। उनके पिता ·····सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे।'[४७]

आर्यसमाज को परित्याग करने पर **श्री स्वामी कर्म्मानन्द सरस्वती** जैनी होने पर महर्षि दयानन्दजी की जाति के सम्बन्ध में लिखते हैं :—'स्वामीजी की जाति

---

४५. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १७८ (संवत् १९९० वि० में इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण)

४६. 'अछूतों की उत्पत्ति' पृष्ठ ४५ (संवत् १९८९ वि० में लेखक, आर्यसमाज। मेस्टन रोड, कानपुर द्वारा प्रकाशित, द्वितीय वार)

४७. ,भारत के सन्त महात्मा' पृष्ठ ८२५ (नम्बवर १९५७ ई० बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, ३ राउन्ड बिल्डिग कालवादेवी, बम्बई २ द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण)

के विषय में हमारे पास इसके सिवा अन्य कोई प्रमाण नहीं है कि जिसको स्वामीजी का हस्तलिखित जीवन चरित्र कहा जाता है।, उसमें लिखा है कि मैं उदीच्य गोत्र का ब्राह्मण हूं संभव है यह सत्य हो।'[४८]।

इन्होंने महर्षि दयानन्दजी का नाम पं० कर्शनजी तिवाड़ी[४९] ही माना है और स्वामीजी के पिता का नाम 'भजनहरि' अथवा हरिभजन आदि की है। उसके विषय में भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं है जिन पर विश्वास किया जा सके'।[५०]

अत: जो लोग महर्षि दयानन्दजी को कापड़ी लिखते वा कहते हैं उनका उत्तर एक जैन मत के संन्यासी ने ही खण्डन कर दिया और विरोधियों के मुंह पर थप्पड़ लगा दिया।

**श्री नगेन्द्रनाथ वसु** 'प्राच्य विद्या महार्णव' सिद्धांत बारिधि, एम० आर० ए० एस० लिखते हैं:—'आर्यसमाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म विक्रमीय संवत् १८२४ को गुजरात देश के मौरबी राज्य के अवदीच्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके पिता शैव थे।······५१

**डा० राजबली पाण्डेय** एम० ए०, डी० लिट्०, विद्यारत्न, भूतपूर्व कुलपति जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर (म० प्र०) लिखते हैं:—'दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के प्रवर्त्तक और प्रखर सुधार-वादी संन्यासी।······विक्रम सं० १८८१ में इनका जन्म काठियावाड़ में एक शैव औदीच्य ब्राह्मण कुल में हुआ। इनका शैशव काल में मूलशंकर नाम था।' ५२

यहां चार ऐसे विद्वानों के प्रमाण हैं जो आर्यसमाजी नहीं हैं।

---

४८. 'श्रीमद्दयानन्द परिचय' पृ० २४-२५ (अगस्त १९३६ ई० में मन्त्री प्रकाशन विभाग, दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी (हरयाणा) द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)

४९. वही, पृ० १९ पंक्ति १५

५०. पंक्ति ५, ६

'५१. हिन्दीविश्वकोश' २५,२७ खण्ड, द्वितीय भाग, पृ० ६८३-६८४ (सन् १९१५ में श्री नगेन्द्रनाथ वसु और श्री विश्वनाथ वसु, ९ विश्वकोषलेन, बाग बाजार कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

५२. 'हिन्दू धर्म कोश' पृष्ठ ३१४' (सन् १९७८ ई० में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान'हिंदी समिति प्रयाग' राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिंदी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०) द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

**जैनियों के मुनि अस्पृश्य थे।**

**श्री शिवराज 'सुमनेश'** लिखते हैं :—जैनियों के माननीय मुनिवर्य हरिकेशी महाराज और चितशम्भू भी जन्म से अन्त्यंज ही थे पर उत्तम चरित्र के कारण पूज्य माने गए।' ५३

कर्नल आल्काट के आग्रह पर महर्षि दयानन्द जी ने अपना जीवन चरित स्वयं लिखकर नवम्बर दिसम्बर सन् १८८० के "थियोसोफिस्ट" पत्र※ में प्रकाशित करवाया था। वहां छपा था: —"I was born in a family of northern Brahmin in a towu belonging to the Raja of Morwi in Kathiawar (in 1824.)"

अर्थात् मैं सन् १८२४ में कठियावाड अर्थात् मोरवी राज्य के किसी कस्बे में उत्तरी ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ।

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखते हैं—

"Dayananda's father was Karsajee Laljee Tiwari. Karsanjee was his father and Laljee his grand father. His family belonged to Samvedi Udichya because Tiwari was surrname of the family. Tiwari means one, whose forefathers used to read three Vedas"54

अर्थात् "दयानन्द के पिता का नाम करसनजी लाल जी तिवारी था। करसन जी उनके पिता थे और लाल जी पितामह। ये सामवेदी और दालभ्य गोत्री औदीच्य थे। उनका परिवार तिवारी परिवार के नाम से जाना जाता था, क्योंकि तिवारी परिवार का कुल नाम था। तिबारी का तात्पर्य है कि उनके पूर्वज तीन वेदों का अध्ययन करते थे।"

इसकी पुष्टि करते हुए कविरत्न पण्डित श्री मेधाव्रतजी लिखते हैं—

"इलाललामरूपायां तस्यां शीलगुणांचितः।
सहस्रोदीच्यवंशीयब्राह्मणानां शिरोमणिः॥ २१॥

---

५३. 'फिर अछूत क्यों?' पृ० १३ पंक्ति १५ (सन् १९३६ ई० में ज्ञान भंडार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित, श्री सुमेर प्रिन्टिग प्रेस, फुल्ला रोड जोधपुर द्वारा मुद्रित। श्री नाथ मोदी 'विशारद' इन्स्ट्रक्टर। गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल जोधपुर द्वारा सम्पादित)

※ यह अंक हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के पुस्तकालय में हैं। इस चर्चा का उल्लेख श्री महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल ने अपनी पुस्तक "महर्षि जीवन दर्पण" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ३ में किया है।

५४ "वैदिक मैगजीन" मासिक पत्र फरवरी सन् १९१६ ई०।

त्रिवेदी सामवेदज्ञ: शिवभक्तिपरायण: ।
लाललालितबाल: श्रीकृष्णनामाऽभवद्द्विज: ।। २२ ।। ५५

अर्थात्—"पृथिवी का भूषण रूप इस नगरी में सहस्रोदीच्य वंशों में उत्पन्न, सामवेदी, शिवभक्तिपारायण, शील और गुण से युक्त श्री लाल जी के पुत्र करसन जी त्रिवेदी नामक ब्राह्मणश्रेष्ट रहते थे।"

पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकारने भी लिखा है—"आपके पिताजी का नाम करसनजी लालजी त्रिवाड़ी था। ये सामवेदी उदीच्य ब्राह्मण थे।

श्री जियालाल जैनी ने "दयानन्द छल कपट दर्पण" में स्वामी दयानन्द का नाम शिवभजन, पिता का नाम भजनहरि, जाति कापड़ी और मोरवी राज्य के रामपुरा गांव में रहने वाला लिखा है।" श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा बम्बई के आग्रह करने पर मालिया के पुलिस आफिसर ने अपनी 'तहकीकत की रिपोर्ट" मई सन् १९१० में लिखा है—"ते ग्राम केवल २५.३० घरनुं छे अने त्यांना वृद्धो तथा एक बे साधुओं पण कहे छे ते गाममां कापडी नी बस्ती हाल नथी तेमज ते पहलां पण कापडीनुं घरज न होतुं।"

अर्थात्—वह गांव केवल २५-३० घर का है। वहां के वृद्ध तथा एक दो साधु भी कहते हैं कि इस गांव में न तो हाल ही में किसी कापडी की बस्ती है और न बहुत पहले भी कभी किसी कापडी का घर इसमें था। नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्।"

श्री जियालाल जैनी के मत का खंडन पं० बालकृष्ण शर्मा तथा पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण × ने किया है। अत: 'आर्यसमाज' के द्वारा खंडन न किया जाना, आपका लिखना नितान्त असत्य है और जानबूझकर आपने महर्षि दयानन्दजी को बदनाम करने के लिए कापडी लिखा है।

---

५५. दयानन्द दिग्विजय" महाकाव्य पूर्वार्ध, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३९.
(तिवारी त्रिपाठी का अपभ्रंश है। सिद्धपुर जिन ब्राह्मणों को दिया गया है, वहां इसकी भी चर्चा है। ततस्तदुदालभ्य गोत्रस्य सामवेद रतस्य च-। त्रिपाठी पद युक्तस्य-श्री स्थलप्रकाश।
यहां शुद्ध त्रिपाठी शब्द कहा गया है। त्रिपाठी शब्द ही तिवारी हो गया है और सौराष्ट्र में वही त्रिवाड़ी हो गया है—लेखक
"महर्षि दयानन्द सरस्वती सचित्र प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रथम संस्करण पृष्ठ ४.

× देखो पं० बालकृष्ण शर्मा रचित 'मार्तण्ड प्रकाश.'
कान्यकुब्जों का इतिहास प्रथम संस्करण पृ० ११२ की पाद-टिंप्पणी.

मासिक पत्रिका "गंगा" के भूतपूर्व सम्पादक ऋग्वेद के हिन्दी भाषान्तरकर पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्त शास्त्री ने लिखा है कि—आधुनिक युग में सर्वाधिक वेद प्रचार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया है स्वामी जी वेद विद्या के अनन्य भक्त और विद्वान् थे। उनके कुछ विदेशी कायल थे।

स्वामी जी का जन्म संवत् १८८१ में कदाचित् आश्विन कृष्णा सप्तमीय को हुआ था। उनका नाम मूल जी वा मूलशंकर था। वे सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे।...... स्वामी जी संवत् १६४० की दीपावली के दिन स्वर्गवासी हो गये।"५६

आपने महर्षि दयानन्द जी को तो कापडी लिखा पर अपने सनातनधर्मी आचार्य सम्प्रदाय प्रवर्तकों की जाति की ओर भी ध्यान दिया ? वैष्णव सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक शठकोपजी अस्पृश्य जाति के थे।

श्री रंगाचार्य एम० ए० लेक्चरार इन हिन्दी गर्वनमेंट कालेज पालघाट (दक्षिण भारत) लिखते हैं—

The Alvars included a saint of depressed classes the famous Tirupanna Alvar and of the others Namanalver, who was also known as Parankusar and Satakopar and who is regarded as the greatest of the order was a Vallal." ※

अर्थात्—अलवारों में अछूत जाति के संत सम्मिलित थे, प्रसिद्ध तिरुपन अलवार और दूसरे नमलवार जो परानकुशर और शठकोप के नाम से जाने जाते हैं और उस सम्प्रदाय का सबसे महान् व्यक्ति था, वह एक बलाल था।

गर्ग जी आद्य श्री शंकराचार्य के वर्ण के विषय में देखें— ※

श्री सी० एन० कृष्ण स्वामी अय्यर एम० ए०, 'एल० टी० सहायक नेटिव कॉलेज कायम्बूटर ने "Life and Time of Shankar नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक के पृष्ठ १२ में श्री आनन्दगिरि कृत 'शंकर विजय' के आधार पर आप लिखते हैं—

We are told that there was a pious Barhmin living with his wife at this place (Chidambarram) and that at one time the husband retried to a neighouring forest after renouncing the world that the wife continued for a long time to serve the lord of Chidambaram

---

५६. "वैदिक साहित्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३६८.

※ The Cultural Heritage of India" PP. 73

※ श्री रजनीकांत शास्त्री : 'मानस मीमांसा' प्रथम संस्करण पृष्ठ १८-१६.

and that as reward of her devotion the lord was pleased to make her conceive in some mysterious manner and the child thus born to her was Shankar.

अर्थात् – हम लोगों से कहा जाता है कि इस स्थान पर चिदम्बरम् में धर्म निष्ठ ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ रहते थे। काल पाकर वे संसार से विरक्त हुए और एक निकटवर्ती वन में चले गए। उनकी स्त्री बहुत काल तक चिदंबरम् के अधिष्ठाता देवता की सेवा करती रही। देवता ने उसकी भक्ति के पुरस्कार स्वरूप उसे किसी गुप्त तथा करामाती उपाय से गर्भवती बना दिया और उस प्रकार जो बच्चा हुआ वही शंकर हुआ।' ※

पुनः उसी पृष्ठ में पंडित नारायणाचार्य कृत 'मणि मंजरी' के आधार पर लिखा है—

"The writer of Manimanjari states that a Brahmin widow of Kaladi went astray form the ascetic life imposed upon her and begot male child, and this child was Shankar. This plain statement, however, is based upon a tradition still current in some parts of Malabar, that young widow of Kaladi once went to the temple of Siva along with girls of her own age and that as some among them prayed for children, she also did so, and the lord granted her request, and that she bore Sankar in cocequence" ×

अर्थात्—मणि मंजरी का लेखक कहता है कि कालडी की एक विधवा ब्राह्मणी तामस जीवन में जो उसके लिए विहित था, परच्युत हो गई और उसने एक पुत्र उत्पन्न किया। यही लड़का शंकर था। इस सीधे-सीधे कथन का आधार परम्परागत यह लोक कथा है जो मालाबार के कुछ भागों में अब तक प्रचलित है। यह लोक कथा यह है कि कालडी की एक अल्पवयस्क विधवा अपनी ही उम्र की अन्य लड़कियों के साथ एक बार शिव के मन्दिर में गई और चूंकि उन लड़कियों में से कुछ ने बच्चों के लिए प्रार्थना की उसने भी वैसा ही किया और प्रभु ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। परिणामस्वरूप उसने शंकर को उत्पन्न किया। ※

---

※ ब्राह्मण देवता तो संसार से विरक्त होकर वन में चले गये थे। उनके संसार त्याग के बाद उनकी धर्म पत्नी बिना किसी पुरुष के संसर्ग के ही गर्भवती कैसे हो गई यह समझ में नहीं आता। पाठकगण Mysterious तथा Miraculous शब्दों से अपना जो भाव चाहें निकाल लें।

※ मानस मीमांसा प्रथम संस्करण पृष्ठ १९-२०

※ महात्मा ईसा मसीह की उत्पत्ति के समान इनकी उत्पत्ति हैं। लेखक

पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य जी लिखते हैं—मणि मंजरी के अनुसार शंकर एक दरिद्री ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। उपाध्याय जी के कथन से श्री अय्यर के लेख की पुष्टि होती है।

श्री शंकराचार्य की माता का क्या नाम था, आज तक पौराणिकों ने निर्णय नहीं किया है।

उपाध्याय जी श्री शंकराचार्य जी की माता के विषय में लिखते हैं कि—"इस कन्या का नाम सती × तथा आनन्दगिरि ने विशिष्ठा + बतलाया है।...※

वेद व्यास जी ने शंकराचार्य को पूर्वजन्म का असुर लिखा है—

"मणिमत्पूर्वका दुष्टा दैत्या आसन् कलौ युगे।...

तेषां मध्य शंकरस्तु पूर्वं यो मणिमान् खलः। स्कन्द पुराण खंड ※

कई पौराणिक तथा अन्यान्य लेखकों ने श्री शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न' बौद्ध लिखा है।

'सांख्य सूत्र' के वृत्तिकार पं० विज्ञानभिक्षु ने 'पद्म पुराण' का प्रमाण देकर लिखा है।

'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ।। ※

अर्थात्—शिव पार्वती जी से कहते हैं—मायावाद असत् शास्त्र है और छिपा हुआ बौद्ध मत है उसको मैंने ही ब्राह्मण शंकराचार्य रूप धारण कर कलियुग में वर्णन किया है।

---

※ 'श्री शंकराचार्य के जीवन चरित तथा उपदेशों का प्रामाणिक विवरण' प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३.

× माधव दिग्विजय सर्ग २१५.

+ सा कुमारी सदाध्यानसक्ता भूतज्ञानतत्परा।
विशिष्टेति च नाम्ना तु प्रसिद्धाभून् महीतले ।। आनन्दगिरि पृ० ८.

※ 'श्री शंकराचार्य' प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३.
'वैदिक सम्पत्ति' द्वितीय संस्करण पृष्ठ ५१० की पाद टिप्पणी।
तुलना करो मासिक वेद प्रकाश' मेरठ वर्ष ८ मास १० सन् १९०४ ई. पृ.१९

※ पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य कृत 'श्री शंकराचार्य' प्रथम संस्करण पृष्ठ २७१ की पाद टिप्पणी 'पं० माधवाचार्य कृत पुराण दिग्दर्शन' द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३३.
पं० कालूराम शास्त्री 'पुराण धर्म' पूर्वार्द्ध द्वितीय संस्करण पृ० ५.

पं० देवराज जी शास्त्री लिखते हैं—"विज्ञानभिक्षु जैसे विद्वान् भी शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध छिपा हुआ शून्यवादी कहने से नहीं चूके। शंकर का मायावाद हमारे प्रबलतम नैतिक प्रयत्नों और गूढ़तम भक्ति भावनाओं को मदारी के खेल जैसा झूठा करार देता है।"*

डॉ० भगवानदास जी एम० ए० लिखते हैं—"शास्त्र के विषय में तो शंकर के अनुयायी "प्रच्छन्न बौद्ध" ही कहलाए। मायावादं असत्शास्त्रं प्रच्छन्नबौद्धमेव च।"+

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० एल० एल० बी० लिखते हैं—"शंकराचार्य को "प्रच्छन्न बौद्ध" कहते हैं। कदाचित् उनके मायावाद और बौद्धों के विज्ञानवाद में साम्य होने के कारण ही लोग ऐसा कहते हैं।"×

पं विश्वनाथ शास्त्री वेदव्याकरणतीर्थ लिखते हैं—"शंकर या उनके सम्प्रदाय का सात्विक मतभेद बौद्ध धर्म से कहीं भी नहीं है। यहां तक कि शंकराचार्य प्राचीनतम मूलभूत बौद्ध धर्म के ही उद्धारक प्रतीत होते हैं, उन्हें इस कारण "प्रच्छन्न बौद्ध" अर्थात् छिपा हुआ बौद्ध माना जाता है।"□

पं० रुद्रदेव जी शास्त्री, वेदाचार्य, वेदालंकार, वेदशिरोमणि, दर्शनालंकार अपने 'चेतन मीमांसा' शीर्षक लेख+ में लिखते हैं—'शंकराचार्य ७८८-८२० ई० के शारीरक भाष्य में महायान सम्प्रदाय के बौद्धों के दर्शनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की विवेचना माध्यमिक और योगाचार के दर्शनों में की गई है। ...शांकर दर्शन के सिद्धान्तों के लिये एक सुप्रसिद्ध शब्द है—मायावाद। शंकर की 'माया' 'या मा' जो न होवे अर्थात् होती हुई भी न होवे, सदसद् विलक्षणं नागार्जुन का 'मध्यमक' शून्य है शंकर के अनुयायियों में एक नाम है दृष्टि सृष्टिवाद। दृष्टि सृष्टिवाद में प्रधान अन्तर यही है कि वेदान्त पक्ष में 'ब्रह्म' की सत्ता पारमार्थिकी वस्तुत: है और बौद्ध पक्ष में ब्रह्म की भी पारमार्थिकी सत्ता नहीं हैं। **वामावववाद** से उसकी आवश्यकता भी नहीं है। इसीलिए मायावाद को 'प्रच्छन्न बौद्धवाद, भी कहा जाता है।

* 'भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास' प्रथम संस्करण पृ० ३८३

\+ शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद पृ० ३२ (जून १६४४ ई० में सस्ता साहित्य मंडल

× हिन्दु भारत का उत्कर्ष, पृ० २६४ (वैद्य जी की अंग्रेजी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ मेडिकल हिन्दू इंडिया' का डा० भगवानदास जी एम० ए० द्वारा अनुवादित संवत् १६८६ वि० ज्ञानमंडल यन्त्रालय वाराणसी में मुद्रित)।

□ 'भगवान् बुद्धावतार' पृ० ३६ (जनवरी १६४२ ई० में अखिल भारतीय हिन्दू धर्म सेवा संघ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता से प्रकाशित)।

\+ मासिक पत्रिका 'गंगा' सुल्तानगंज, प्रवाह ४ मई सन् १६३४ ई० तरंग ५ पृ० ५८३।

श्रीनारायण पंडिताचार्य ने 'मध्व विजय' में श्री शंकराचार्य को 'शठश्चतुर्थाश्रम-मेष भेजे' महातस्करमेनमाहु: प्रभृति श्लोकों में शठ और महातस्कर कहा है।

यहां श्री शंकराचार्य को शंकररूप कहने वाले और उन्हें ही 'प्रच्छन्न बौद्ध, शठ, महातस्कर' तक कहने वाले पौराणिक ही हैं।

श्री नारायण पंडिताचार्य जी पुन: लिखते हैं :—

'ग्रान्मायूयमव्ययहृद् ग्राखुभुग्दा श्या वा पुरोडाशमसारकाम:।
मणिग्रजं वा प्लवगो व्यवस्थो जग्राह वेदादिकमेष पाप: ॥''

इस श्लोक में श्रीशंकर को चूहा खाने वाला बिलाव, कुत्ता, बन्दर, चोर, पापी आदि बड़े मधुर शब्दों से स्मरण किया है,

महर्षि दयानन्द जी संन्यासी थे। संन्यासी का माता-पिता-गुरु ही होता है। उसे पूर्व परिचय देने की आवश्यकता नहीं होती। आर्यसमाज ने अनुसन्धान करके टंकारा शताब्दी पर उनके निवास-स्थान, कुल परिवार आदि का निश्चय करके घोषणा कर दी कि—

(१) टंकारा ही स्वामी जी का जन्म स्थान है।
(२) स्वामीजी के पिता कर्सनजी लालजी त्रिवेदी थे।
(३) कर्सनजी जमेदार (Collector) थे।
(४) शर्राफ थे।
(५) जमींदार थे।
(६) कट्टर शैव थे।
(७) उनका पुत्र बाईस साल की आयु में घर से भाग गया था।
(८) ऋषि दयानन्द का मूल नाम मूलजी दयाराम था।''५७

महर्षि दयानन्दजी के जीवनचरित्र में कहीं नहीं आता कि वे १४ वर्ष की अवस्था तक जनाना स्वांग भरकर नाचते थे।

यह तो आपकी व आपके मधुर सम्बन्धी दुष्ट जियालाल जैनी के विकृत मस्तिष्क की कुकल्पना है।

महर्षि दयानन्द जी की दृष्टि में नृत्य क्या वस्तु है वह उनके ही शब्दों में देखिये :—

गान्धर्ववेद कि जिसको गान-विद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेद

५७. देखो—''सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का २७ वर्षीय इतिहास (कार्य विवरण) पृ० ७३-७४ (संवत् १९९६ वि० में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली द्वारा प्रकाशित)।

का गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्दभशब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।"५८

इससे प्रमाणित होता है कि महर्षि दयानन्द जी 'नारदसंहिता' के अनुसार साम-वेद को गाते हुए अङ्ग चेष्टा का नाम जो नृत्य है, उसे विद्यार्थियों को सिखाने की शिक्षा देना उचित मानते थे। वेश्या, भांडवत् नृत्यगान सिखाने को अनुचित मानते थे।

ऐसे सामगानपूर्वक नृत्य करने वाले के लिए वेद में प्रार्थना है---

"नृतायानन्दाय तलवम्" (यजु ३०। २०)

महर्षि दयानन्द भाष्य—"हे परमेश्वर वा राजन्! आप नाचने के लिए और आनन्द के अर्थ ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिए।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिये कि हंसी और व्यभिचार आदि दोषों को छोड़ और गाने बजाने-नाचने की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें।"

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र—"......(वीणावादम्) वीणा बजाने वाले को, (पाणिघ्नम्) मृदङ्ग बजाने वाले को, (तूणवध्मम्) बृहत् बंशी बजाने वाले को, (तान्) इन तीनों को (नृत्ताय) नृत्य के निमित्त नियुक्त करै (आनन्दाय) आनन्द के निमित्त (तलवम्) ताली बजाने वाले को नियुक्त करै।" ५६

श्रीमहीधराचार्य—"......नृत्ताय आलभते आनन्दाय तलवम्......।"६०

अर्थात्---"नाचने वाले आनन्द देवता के लिए, ताली बजाने वाले का बध करे।"

आपके वाममार्गी गुरु को यहां नृत्य करने वाले का वध सूझा। धन्य हैं अपके गुरु और आप।

महर्षि दयानन्द जी का अर्थ वेदानुकूल तथा युक्तियुक्त है। इसी सामगानपूर्वक नृत्य को सिखाने का आदेश पुराणों में है—

प्रातरुत्थाय शिष्यानध्यापयति यत्नतः।
वेदं शास्त्रं नृत्यसंगीतं कस्तेन सदृशः कृति ॥१६॥

(भविष्य पुराण, उत्तर० अ० १७४)

५८. "सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

५६. शुक्ल यजुर्वेद संहिता मिश्र भाष्य, उत्तरार्ध, पृष्ठ ११८० (संवत् १६५६ वि० बम्बई संस्करण)

६०. शुक्ल ययुर्वेद संहिता उव्वट महीधर भाष्य तृतीय खण्डम्, पृष्ट १४६८ (सन् १६१३ ई० चौखम्बा काशी संस्करण)

अर्थ—जो गुरु प्रात:काल उठकर अपने शिष्य को वेद शास्त्र, नृत्यगीत सिखाता है उस जैसा कृतकृत्य कौन है ?"

उसी सामगानपूर्वक नृत्य को महादेव जी भी करते थे, जैसे—

ततः सुनटरूप.ज्यौ मेनकायां गणे मुदा।
चक्रे सुनृत्यं विविधं गानं चातिमनोहरम् ।।२८।।
(शिव पुराण, रुद्र संहिता २, पार्वती खण्ड ३, अ० ३०)

अर्थ—"महादेव जी ने सुन्दर नट का रूप धारण करके प्रसन्नता पूर्वक मेनका के आंगन में अनेक प्रकार का सुन्दर नृत्य तथा अन्य मनोहर गान किया ।।"

## मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी का नृत्य

इति स्तुत्वा शिवं तत्र मंत्रध्यानपरायणः।
पुनः पूजां ततः कृत्वा स्वाम्यग्रे स ननर्त ह ।।३१।।
(शिव पुराण, कोटि रुद्र संहिता अध्याय ३१)

अर्थ—"राम ने शिव की स्तुति करके मन्त्र द्वारा ध्यान लगाकर फिर पूजा करके अपने स्वामी शिव के आगे नृत्य किया।"

जिसके उपास्यदेव श्रीराम नृत्य करते थे, नृत्य करने वाले शिव के उपस्थेन्द्रिय और पार्वती के भग (योनि) की पूजा करके पापी पेट को भरने वाले भी नृत्य पर आक्षेप करते है; 'किमाश्चर्यमतः परम्'।

स्वयं कृष्णजी महाराज गोपियों सहित नृत्य करते थे जिसका वर्णन भागवत पुराण में है।

क्या आप गन्धर्ववेद के कर्त्ता नारद व्यास, महादेव, राम तथा कृष्ण प्रभृति सामवेदपूर्वक नृत्य-गान करने वालों को महर्षि दयानन्दजी की भांति कापड़ी की पदवी देंगे।

## विष्णु का जनाना स्वांग बनाना

समुत्पन्नेषु रत्नेषु क्षीरोदमथने पुरा।
दैत्यानां मोहनार्थाय योषिद्भूते जनार्दने।।११।।
(भविष्य पुराण, उत्तर पर्व ४ अ० ६०)

अर्थ—"पहिले समय में क्षीर सागर के मंथन करने पर रत्न उत्पन्न हुए तब विष्णु ने दैत्यों को छलने के लिए स्त्री का रूप धारण किया।"

क्या आपके उपास्यदेव में इतनी भी शक्ति नहीं थी कि बिना जनाना स्वांग बनाए दैत्यों को पराजित करते ? जिनको आप परमात्मा बनाते हैं वे तो सामर्थ्यहीन हैं।

आपके मस्तिष्क में कुछ विकृति आ गई है तभी आप ऊटपटांग बातें लिखकर वदिक सिद्धान्त पर आक्षेप करते हैं।

आपने अपने कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के चरित्र को ही पुराणों में पढ़ लिया होता तो इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी के चरित्र पर ओछा आक्रमण नहीं करते। ध्यान-पूर्वक सुनिए—

### ब्रह्मा का अपनी पुत्री से व्यभिचार

एतस्मिन्नन्तरे वक्रात्समुद्भूता च शारदा।
दिव्यांगसुन्दरं तस्या: दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुर: ।।
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडित:।
रतिं देहि मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलम् ।।
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम्।
पंचवक्रोऽयमशुभं न योग्यस्तव कन्धरे।"

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग, पर्व ३, अध्याय १३, श्लोक २ से ४ तक)

अर्थ—इतने में उसके मुख से शारदा उत्पन्न हुई। उसका दिव्य तथा सुन्दर अङ्ग देखकर ब्रह्मा कामातुर हो गए। उस कन्या को बलपूर्वक पकड़ कर काम-पीड़ित ब्रह्मा जी बोले—हे मद से घूरते हुए नेत्रों वाली! मुझे रति दे और मुझ कामातुर की रक्षा कर। उसकी माता शारदा ने क्रोध में आकर ब्रह्मा से कहा कि यह पांचवां मुख तुम्हारा अशुभ है। यह तुम्हारे कन्धे पर योग्य नहीं है अर्थात् शाप दिया कि तुम्हारा पांचवां मुख नष्ट हो जावे।"

### पोती का मुख देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात

गौर्या विवाहे तत्पादौ दृष्ट्वा प्रस्खलितोऽभवत्।
यत्र ते बालखिल्यास्तु जाता: सद्ब्रह्मचारिण: ।।

अर्थ—"गौरी के विवाह में ब्रह्मा जी प्रस्खलित हो गए जिसमें प्रसिद्ध बालखिल्य नामक ब्रह्मचारी उत्पन्न हुए।"

···मुहुर्मुहुरहं तात पश्यामि स्म सतीमुखम्।
अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि सोऽवश: ।।२७।।
मम रेत: प्रचस्कंद ततस्तीक्षणाद् द्रुतम्।
चतुर्विन्दुमितं भूमौ तुषारचयसन्निभम् ।।२८।।

(शिवपुराण रुद्रसंहिता, सती खण्ड २, अ० १०)

अर्थ—"हे पुत्र! मैं बार बार सती के मुंह को देखता था। सो मैं विवश हुआ इन्द्रियों के विकार को प्राप्त हुआ ।।२७।।

तब उसके देखने से शीघ्र ही मेरा वीर्य ओस के कतरों के समान चार बून्दमात्र भूमि पर गिर पड़ा ।।२८।।

क्या आपके ब्रह्मा जी प्रमेह रोगाक्रान्त थे कि पातों को देखते ही वीर्यपात हो गया ?

## विश्वामित्र तथा ऋष्यश्रृंग का वेश्यागमन

इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता।
शृङ्गिणा च महाप्राज्ञ वेश्यासंगः कृतः पुरा।
न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीम् ॥४६॥

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग, पर्व ३, अ० २८)

"(शोभा नाम की यवन वेश्या ने कृष्णांश से संग करने के लिए कहा। उसके उत्तर देने पर शोभा ने कहा)—यह सुनकर वह बोली ? हे महाप्राज्ञ ! पहिले विश्वामित्र तथा ऋष्यश्रृंङ्ग ने वेश्यासङ्ग किया था। उसमें से कोई भी नरक में नहीं गया। इसलिए तू मुझ कामातुर से अवश्य भोग कर ॥४६॥

## त्रिदेवों का विचित्र चरित्र

स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व ३, खण्ड ४, अ० १८)

अर्थ—ब्रह्मा अपनी पुत्री को, विष्णु अपनी माता को तथा भगवान् शम्भु अपनी भगिनी को ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त हो गए।"

अब आप अपने पूर्वजों की उत्पत्ति भी देखिए—

वशिष्ठ—"गणिकागर्भसंभूतो वशिष्ठश्च महामुनि।"······

(भविष्य पुराण, ब्रह्मपर्व १, अ० ४२ श्लो० २९)

अर्थ—"और वेश्या के गर्भ से महामुनि वशिष्ठ उत्पन्न हुए।"

पराशरजी—"जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः॥"

(भविष्यपुराण, ब्रह्मपर्व १ अ० ४२ श्लो० २२)

अर्थ—"व्यास मल्लाह की पुत्री से उत्पन्न हुआ। तथा पराशर श्वपाकी (कुत्ते का मांस खाने वाली चण्डालिन या डोमिन) के पेट से उत्पन्न हुए।"

"श्वपाकीगर्भसंभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।"

(भविष्यपुराण ब्रह्म पर्व १ अध्याय ४२ श्लो० २७)

अर्थ—"श्वपाकी के गर्भ से व्यास के पिता पराशर उत्पन्न हुए।"

व्यासजी - "जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः।"

(भविष्यपुराण, ब्रह्म पर्व अ० ४२ श्लो० २२)

"व्यास मल्लाह की पुत्री से उत्पन्न हुए।"

"व्यासः कैवर्तकन्यायाम्"।

(वज्रसूचीकोपनिषद्)

अर्थ—"व्यास जी मल्लाह की कन्या से उत्पन्न हुए।"

"कैवर्तगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः।"

(भारतसार, अध्याय ५५ श्लो० २०)

अर्थ—"व्यास नामक महामुनि मल्लाहिन के गर्भ से उत्पन्न हुए।"

"कैवर्ते दाशधीवरौ ॥१५॥

(अमरकोश वर्ग १०

कैवर्त, दाश, धीवर ये तीन नाम मल्लाह के हैं। कैवर्त कहार एक ही हैं।

श्रोत्रिय पं० छोटेलाल लिखते हैं—"धीवर– यह भेद दो शब्दों के संयोग से बना है अर्थात् धी+वरः=धीवरः, अर्थात् कहारों में जो समुदाय बुद्धिमान् था, वे धीवर कहे जाने लगे।"६१

पुनः "मल्लाह— विद्वानों ने कहार जाति का दशवां भेद (केवट) लिखा है। ....."६२

श्री माधवाचार्य शास्त्री जैसे कई पौराणिक महानुभाव यह कहते हैं कि रासलीलादि के समय श्रीकृष्ण की आयु केवल ७ वर्ष की थी, अतः उन पर व्यभिचारादि का दोष लग ही नहीं सकता। अन्य कई महानुभाव रासलीलादि की आलंकारिक आध्यात्मिक व्याख्या तथा अर्थ करते हैं। इनमें से एक भारत धर्म महामण्डल काशी के प्रधान स्वामी दयानन्द बी० ए० ने कहा था कि श्रीकृष्ण की १६१०८ नारियां न थीं, पर नाड़ियां थीं और योगीराज होने के कारण उन्होंने इन पर संयम कर रखा था, इसलिए उन्हें इनका पति कहा गया है। ये बातें सुनने में अच्छी और प्रिय लगती हैं और यदि पुराणोक्त चरित्र की सचमुच ऐसी आलंकारिक व्याख्या पौर्वापर्य को देखने से हो सकती तो हमें प्रसन्नता होती किन्तु निष्पक्षपात भाव से पुराणों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये व्याख्यायें असत्य और अकल्पित हैं जो शास्त्रार्थादि के समय आक्षेपों से बचने के लिए गढ़ ली गई हैं। पुराणों से भी इनका समर्थन नहीं होता। उदाहरणार्थ हम भागवत दशम स्कंध के रासलीला प्रकरण के कुछ श्लोकों को आधुनिक काल के दो प्रसिद्ध पौराणिक पण्डितों की टीका सहित उद्धृत करते हैं।

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छायाग्निम्।
चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते!!

(भागवत १०।२९।३५)

६१. "क्षत्रिय वंश प्रदीप" द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७०६—७०७
६२. वही, पृष्ठ ७११—७१२

इसकी पं० गोविन्द दास काव्यकलाभूषण, साहित्य भूषण, काव्यमनीषी कृत (भागवत पुराणानुवाद श्याम काशी प्रेस मथुरा से प्रकाशित) टीका निम्न है--"हे श्रीकृष्ण ! आपके हास्य दर्शन और मधुर गीत से जो उसमें कामाग्नि उत्पन्न हुई है उसे आप अधरामृत रूपी पिचकारी से शान्त करिये, हे सखा ! हम कामाग्नि और विरहाग्नि दोनों से दग्ध शरीर होकर योगी पुरुषों की पाई आपके ध्यान द्वारा आप ही के चरणों के पास ही पहुंचेंगी।"

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं

प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनशः

त्वत्सुन्दरस्मितजतीव्रकामतप्ताः ।

श्रेष्ठानन पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥

पं० गोविन्ददास कृत टीका—हे दुःखहरण ! हम पर आप कृपा कीजिये क्योंकि योगी जनों की भांति हम भी घर बार छोड़ कर आपकी सेवा की आशा से आपके चरण कमल में आई हैं। हे पुरुष भूषण, आपके सुन्दर मन्द हास्य से उत्पन्न हुए तीव्र कामदेव से सन्तप्त हम गोपियों को दासी पद दीजिए।" इन्हीं श्लोकों की **पं० रामतेज पाण्डेय साहित्यशास्त्री** कृत--तथा पंडित पुस्तकालय रेशम कटरा बनारस द्वारा प्रकाशित सामयिकी भाषा टीका निम्न है -"हे प्यारे ! आपकी मन्दमुस्कान भरी चितवन और आपके मनोहर गीत के सहारे हृदय में प्रबल कामानल प्रज्वलित हो रहा है उसे अपने अधरामृत के प्रवाह से शान्त करिये नहीं तो आपके विरह से उत्पन्न अग्नि से हमारे शरीर भस्म हो जायेंगे। (१०।२९।३५)

भागवत १०।२९।६८ टीका---'अतएव हे दुःखदलन ! आप हम पर प्रसन्न हों। हम आपकी सेवा करने की आशा से ही अपने घरों को छोड़ कर आपकी चरण शरण को प्राप्त हुई हैं। हे पुरुष भूषण आपकी सुन्दर मुसकानभरी चारु चितवन से हमारा चित्त अत्यन्त काम सन्तप्त हो रहा है आप हमें दासी बनाइये।" ऐसे स्पष्ट वर्णन के होते हुए इस रासलीला को आध्यात्मिक सम्बन्ध बताना अपने को और जनता को धोखा देना नहीं तो क्या है ? संस्कृत की श्रीधरी टीका और वल्लभाचार्यकृत सुबोधिनी तथा उसके आधार पर निर्मित गिरिधर कृत टीका में भी इसी प्रकार के अर्थ किये गये हैं। विद्वान् देख सकते हैं। हम विद्वानों का ध्यान इन तथा निम्नलिखित अन्य श्लोकों की ओर आकृष्ट करते हैं! रासलीला के निम्न वर्णन देखिए--"बाहु प्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालमननर्मनखाग्रपातैः। क्ष्वेल्या न लोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥१०।२९।४६॥ **श्रीधरी टीका** -"रमण प्रकारमाह बाहुप्रसारेति

दूरे स्थितानां ग्रहणार्थं बाहुप्रसारणं, परिरम्भः—बलादाकृष्यालिङ्गनम्, करादीनाम् आलम्भन स्पर्शश्च (नर्माणि) परिहास वचनानि····· तैश्च व्रजसुन्दरीणाम् (रति-पतिम्) कालम् (उत्तम्भयन्) उद्दीपन (रमयाञ्चकार) ताः रमयामास ।। वल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी टीका में भी संस्कृत व्याख्या इसी प्रकार की है जिसका प्रारम्भ—',एवं सर्व भावेन तासां (गोपीनां) स्मरणज्ञाकेलित्वं सम्पादितम् अतः परम् अष्टविधालिङ्ग-नादिपूर्वकं वेष्टिकादियुक्तरसविलासचरित्रमाह ।

·····सयुक्तः कामो रतिपतिः – एवमाधिदैविकं कामम् उद्बोधयन् रमयांच-कार गोपीनां सुखमेव प्रकरितवान् ।

इन श्लोकों का पं० गोविन्ददास साहित्यभूषण, काव्यमनीषी कृत हिन्दी अनुवाद देखिए– "भुजाओं का फैलाना, आलिंगन करना. हाथ, वेणी, जांघ' नीवी, स्तन, इनका स्पर्श करना, हास्य के वचन कहना, नखों के अग्र भाग चुभाना, क्रीड़ा करना, देखना और हंसना इन उपायों से व्रज की स्त्रियों का कामोद्दीपन करते हुए भगवान् ने उनको रमण किया ।

**पं० रामतेज पाण्डेय साहित्य शास्त्री कृत हिन्दी टीका—**

हाथ फैलाना, आलिंगन करना, कर, अलक, जांघ, कटिवस्त्र के बन्धन और स्तन आदि का स्पर्श करना, मजाक करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवन से ताकना और मन्द-मन्द मुस्कान आदि उपायों से व्रज-बालाओं का कामरस उद्दीप्त करते हुए भगवान् कृष्ण उन व्रज-बालिकाओं के साथ खेलने लगे ।"

"चूर्णिका" टीका— "तदा कृष्णो बाहुप्रसारेणाऽऽलिगनेन हस्तकेशोरुस्तनेषु स्पर्शेन परिहासेन नखाग्रपातेन क्रीडयाऽवलोकनादिभिश्च गोपीनां संदीपयन् क्रीडया-मास ।।"

अर्थात् – "उसी मनोहर यमुना के तट में जाकर, बाहु फैलाना, लिपटना, गले लगाना, कर, अलक, जांघ, नींवी (कमर के कपड़े की गांठ) और स्तनों को छूना, हंसी मसखरी, नखच्छेद देना, क्रीड़ा, कटाक्ष और मन्द मुस्कान इत्यादि से कामोद्दीपन करते हुए श्रीकृष्णचन्द गोपियों के साथ रमण करने लगे ।"

भागवत १०।३१।१४ का श्लोक और उसकी टीकायें भी देख लीजिये और तब निश्चय कीजिये कि यह कैसी लीला है जिसका आरोप श्री कृष्ण पर किया गया है ! "सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बिततम इतर रागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तद धरामृतम् ।।

श्रीधरी टीका-- सुरतसम्भोगसुखं वर्धयतीति सुरतवर्धनम् ।

**पं गोविन्ददास कृत भाषानुवाद**—"हे वीर ! कामोद्दीपक, शोकहारी स्वर से भरी बांसुरी से चुम्बित चक्रवर्ती आदि सुखों को भुलाने वाला अपना अधरामृत हमें दीजिए ।"

**पं० रामतेज पांडेय साहित्य शास्त्री** कृत अनुवाद – "हे वीर ! काम सुख को बढ़ाने वाला, शोक को दूर करने वाला, बजती हुई अपनी बांसुरी से भली भांति चुम्बित और मनुष्यों की आसक्तियों को भुलाने वाला अपना मधुर अधरामृत हमें दान दीजिए ।"

इतने से ही यह अत्यन्त स्पष्ट है कि रासलीला के समय श्री कृष्ण को ७ वर्ष का बालक बताना, इस लीला को केवल विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेमसम्बन्ध का सूचक बताना इत्यादि सब कल्पित मन गढ़न्त बातें हैं। १६१०८ नाड़ियां मानने वाली बात भागवत पुराण के 'अस्थितस्य परं धर्म कृष्णस्य गृहमेधिनाम् आसन् पोडशसाहस्र' महिष्याश्च रसाधिकम् ।

तथा विष्णु पुराण के 'भगवतोऽप्यत्र मर्त्येऽवतीर्णस्य षोडशसहस्रमष्टोतरशतं स्त्रीणामभवत् । इत्यादि से कट जाती है जहाँ श्री कृष्ण की १६१०८ स्त्रियां बताई गई हैं और नारी शब्द का नहीं अपितु विष्णु पुराण में स्त्री और भागवत में महिषी (रानी) शब्द का प्रयोग हुआ है । यह उपर्युक्त वर्णन क्या नाड़ियों के साथ आलिंगन' चुम्बनादि लीलाओं का वर्णन है ? इस रासलीला पञ्चाध्यायी की समाप्ति पर जो परीक्षित का प्रश्न और शुकदेवजी का उत्तर है उसको उद्धृत कर हम इस अप्रिय किन्तु आवश्यक प्रसंग को समाप्त करना चाहते हैं। परीक्षित ने रासलीला का वृत्तान्त सुनकर शुकदेव जी से प्रश्न किया—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ।। २७
कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ।। २८
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगेप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ।। २९

(भागवत स्क० १० अ० ३४ पूर्वार्द्ध—)

इन श्लोकों का अनुवाद पं० रामतेज कृत निम्न है—"हे भगवान् ! जगत्पति भगवान् कृष्ण धर्म की स्थापना और अधर्म का उच्छेद करने के लिये ही अपने पूर्ण अंश से अवतीर्ण हुए थे । २७। तब फिर धर्म की मर्यादा के वक्ता, रचयिता और रक्षक होते हुये भी उन्होंने पर स्त्री-गमन जैसा धर्म के विरुद्ध काम किया ? ।।२८।।

भगवान् कृष्ण ने पूर्णकाम होकर भी इस प्रकार का निन्दनीय कार्य किया । इसका आशय मेरी समझ में नहीं आया । हे सुव्रत, आप हमारा यह सन्देह निवृत्त कीजिये ।। २९।। भागवत दशम स्कन्धानुवाद । इस प्रश्न का उत्तर शुकदेव जी ने जो दिया उसका प्रारम्भ यों है—

धर्म व्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्वे सर्वभुजो यथा ।। ३०

पं० रामतेज पांडेय कृत अनुवाद— श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजन्! ईश्वर अर्थात् समर्थ पुरुषों द्वारा धर्म का उल्लंघन और हठ पूर्वक साहसिक कार्य होते देखे जाते हैं किन्तु उनसे उन तेजस्वियों को कोई दोष नहीं होता। जैसे सबका भक्षण करने वाला अग्नि उन पदार्थों के गुण-दोष से दूषित नहीं होता, इत्यादि। इस उत्तर से यह स्पष्ट है कि श्री शुकदेव जी रास लीलादि को आलंकारिक व आध्यात्मिक नहीं समझते थे अन्यथा वे स्पष्ट उत्तर दे सकते थे कि तुमने मेरा अभिप्राय ही नहीं समझा। यह तो आध्यात्मिक प्रेम का आलंकारिक वर्णन है इत्यादि। किन्तु ऐसा उत्तर न देकर उन्होंने कहा कि समर्थ पुरुष धर्म को उल्लंघन और हठपूर्वक साहसिक कार्य कर देते हैं परन्तु 'नैनत समाचरज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः' जो ईश्वर नहीं उन्हें मन से भी ऐसा नहीं करना चाहिये यह वचन श्रीकृष्णोक्त गीता के वचन से सर्वथा विरुद्ध है जिसमें कहा है कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ।। गीता ३।२।२१

अर्थात्—श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचार करते हैं अन्य पुरुष भी उसी का अनुकरण करते हैं। वे श्रेष्ठ पुरुष जिसको प्रमाण करते हैं लोक उसी का अनुवर्त्तन करते अर्थात् उसके पीछे चलते हैं।

## कविरत्न पं० मेधाव्रताचार्य जी प्रणित महर्षि दयानन्द जी की प्रशस्ति

कौपीनकेवलः काले हैमन्ते गांगसैकते।
मूर्त्तिमद्ब्रह्मचर्यं हि ब्रह्मलीनो व्यलोकि सः।।
(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग १३ श्लो० २०)

हेमन्त काल में गंगा की रेती में केवल लंगोट धारण कर ब्रह्मानन्द में लीन हुए वे दयानन्द साक्षात् ब्रह्मचर्य की मूर्ति ही दिखाई देते थे।

काकायन्ते पुरा मुग्धा ब्रह्माब्रह्म विवेचन।
हंसायते स्म योगीन्द्रो मुक्ताशः क्षीरपो बुधः।।
(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग १३ श्लो० २६)

विद्वान् लोग ब्रह्म और अब्रह्म के विवेचन में मूढ़ होकर कौवे के समान आचरण करते थे और ऋषि दयानन्द ब्रह्म, जीव और प्रकृति के परीक्षण में हंस समान थे। हंस मोती खाता है और दूध पीता है; उस समय दयानन्द निराहार रहकर दूध पीते थे। हंस दूध और जल को पृथक् करता है। और दयानन्द ब्रह्म, जीवात्मा और प्रकृति को अलग करते थे।

सकलमनुजभूत्यै शुद्धसन्तानसूत्यै,
विमलनिगमविद्यासम्प्रदानाधिकारम् ।
ऋषिमणिजननीनां योषितां घोषयित्वा
जयति यतिकवीन्द्रो ब्रह्ममन्त्रैरुदारः ।।

(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग १३, श्लो० ७६)

मानव मात्र की विभूति स्वरूप, विशुद्ध सन्तति की उत्पत्ति के निमित्त, पुत्र रत्न प्रसविनी नारी जाति के लिए, उदारमना, यति कवीन्द्र दयानन्द देव, वेदमन्त्रों द्वारा पवित्र वेद-विद्या प्रदान का अधिकार आघोषित करके सर्वोपरि विराजमान होकर विजय लाभ कर रहे हैं।

कल्याणार्थः कल्पवृक्षः कृपालुः
कारुण्याम्भोवर्षणः कृष्णमेघः ।
कान्तं कायं ब्रह्मचर्याभिरामं
बिभ्रद् ब्रह्मज्ञान वर्षीव वेदः ।।

(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग ९ श्लो० ४३)

दयालु दयानन्द कल्याणकारी कल्पवृक्ष थे, कारुण्य-जल बरसाने वाले श्याममेघ थे; ब्रह्मचर्य से सुशोभित कमनीय शरीर धारण करने वाले, ब्रह्मज्ञानवर्षी मानो साक्षात् वेद ही थे।

दाक्षीसुतव्याकृतितन्त्रसाक्ष्यं
लब्ध्वा महाभाष्यनदीष्णतां सः ।
श्रीशब्दसाम्राज्य इहाऽखिलेऽपि
सम्राट्पदं नूनमविन्दतार्च्यम् ।।

(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग १०, श्लो. ५१)

स्वामी जी ने अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त करके सम्पूर्ण शब्द साम्राज्य में सचमुच पूजनीय 'सम्राट्' की पदवी प्राप्त कर ली।

इयान् दयानन्दरवेः सुविद्या बुद्धिप्रतापोऽनुपमं दिदीपे।
येनात्र रात्रवपि कन्दरेऽपि नापुः पदं क्वापिसुदम्भिघूका ।।

(दयानन्द दिग्विजय, सर्ग १७, श्लो० ७९)

दयानन्द रवि की सुविद्या और बुद्धि का प्रताप इतना अधिक चमकता था कि जिसके मारे पाखण्डी रूप उलूकगण रात्रि में भी कहीं गिरिकन्दरा में त्राण नहीं पा सके।

अविद्यावाताली जनितमतदावानलकुलै,
अशेषं संसारं कवलितमसारंवनमिव ।
गृहीतैर्गम्भीरान्निगमजलधेर्बोध सलिलैः,
दयानन्दाम्भोदो जयति शमयन्नेष रुचिरः ॥

(दयानन्द लहरी, श्लो० ३)

अविद्या रूपी आंधी से उत्पन्न हुए अनेक मत रूपी दावानल सारे असार संसार रूपी महारण्य को भस्म कर रहे हैं, उसको गम्भीर वेदमहासागर से ग्रहण किए हुए बोध रूपी जलों से शान्त करता हुआ यह सुन्दर दयानन्द रूपी मेघ विजय लक्ष्मी प्राप्त कर रहा है।

अविद्यातिध्वान्तं दिशि दिशि ततं चेतसि नृणाम्,
तमोभिस्तान्तानां श्रुतिरविकराक्रान्तहृदयः ।
द्विजालीशाली यो ह्यमृतमयगोभिर्दलितवान्
दयानन्दं वन्दे सकलजगदानन्दनविधुम् ॥

(दयानन्द लहरी, श्लो० ४)

वेदरूपी सूर्य से ज्ञान-प्रकाश ग्रहणकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि जनरूपी तारा-गणों से शोभित होकर सम्पूर्ण जगत् को आनन्द देने वाले जिस दयारूपी चन्द्रमा ने अपनी अमृतमयी वाणी रूपी किरणों से पाप पीड़ित मानवों के हृदय में फैले हुए अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट किया उसकी मैं वन्दना करता हूं।

असन्मार्गालम्बैर्जनमृगकदम्बैरपसृतम्,
विदूराद्य श्रुत्वा विकलहृदयैः सत्वरमहो ।
सभाजौ वादीन्द्रद्विरदवरवाक्संगरभवः,
मुनीन्द्रस्योङ्कारो रव इव मृगेन्द्रस्य जयतात् ॥

अरे ! जिसे दूर से ही सुनकर विह्वल हृदय असत्यमार्ग पर चलने वाले मनुष्य रूपी मृगगण शीघ्र भाग गए, वह सभा-संग्राम में धुरन्धर पण्डित रूपी महागजों के साथ किए हुए वाग्युद्ध से उत्पन्न हुए सिंहनाद तुल्य मुनीन्द्र का ओङ्कार नाद जय को प्राप्त हो।

भवाम्भोधौ भीमे विपुलविपदुत्तुङ्गतरल,
प्रचण्डोर्मिव्रातैर्विहतवपुषां व्याधिमकरैः ।

नृणामुद्धर्तार निजसदुपदेशौषधवरैः,
समर्थस्तं स्तोतुं प्रवरमगदङ्कारमिह कः ।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक ६)

बहुत-सी विपत्ति रूपी बड़ी-बड़ी चंचल तथा प्रचण्ड लहरों से भयंकर बने हुए भवसागर में रोग रूपी मगरमच्छों से घायल किए हुए शरीर वाले मनुष्यों का अपने सत्योपदेश रूपी उत्तम औषध से उद्धार करने वाले श्रेष्ठ वैद्यराज मुनिवर दयानन्द की स्तुति करने के लिए संसार में भला कौन समर्थ है ?

श्रुतिनां सत्योऽर्थः प्रभुवरकृतीनामनुगुणः,
जगत्कल्याणार्थं परमफलदो युक्त्युपचितः ।
अहो येन प्रोक्तो निगमविदुषा संयमजुषा,
दयानन्दो वन्द्यः किमिव सदलंकार इह नो ।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक ७)

आह ! जगत् के कल्याण के लिए जिन्होंने सृष्टि नियम के अनुसार, युक्तियों से परिपुष्ट, मोक्षफलदायक तथा सत्य अर्थ से युक्त वेदों का भाष्य किया, वे वेदों के विद्वान् सज्जनों के अलंकार, संयमशील महर्षि दयानन्द सरस्वती इस भूमण्डल में हमारे क्यों न वन्दनीय हों ?

विलीनं पाखण्डैः प्रशमितमघैः शान्तमशुभैः,
प्रभूतं सत्कार्यैरुदितमनघार्यैर्यदुदयात् ।
कवीन्द्रैर्वर्णीन्द्र ! प्रतिदिनमयं यन्नुपचयम्,
कथं वर्ण्यो वर्णस्तव तुलितवर्णैरतुलितः ।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक ८)

जिनके उदय से पाखण्डों का नाश हुआ, पाप शांत हुए, अशुभ कार्य बन्द हुए, सत्कर्मों का प्रारम्भ हुआ तथा निर्दोष आर्यों का अभ्युदय हुआ हे ब्रह्मचारियों के शिरोमणि ! उन आपके प्रतिदिन बढ़ते हुए अनुपम यश को गिने-चुने अल्पवर्णों से कवीन्द्रगण किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं ?

श्रुतीनां नाम्ना या विमलमखकर्मण्यपि जनैः,
दुराचारैर्हिंसाऽक्रियत नृपशूनामकरुणैः ।
न हिंस्याद् भूतानीत्यखिलनिगमेषूक्तमिति कः,
विना त्वामीशस्तां मुनिवर ! निषेद्धुं श्रुतिगिरा ।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक १६)

वेदों के नाम से दुराचारी निर्दय मनुष्य पवित्र यज्ञादि कर्मों में जो पशु और मनुष्यों की हिंसा किया करते थे उस हिंसा को—हे मुनिवर ! "प्राणिमात्र की हिंसा न करनी चाहिए, ऐसा समग्र वेदों में उपदेश है।" इस प्रकार वेदों के प्रमाणों से निषेध करने के लिए आपके सिवाय और कौन समर्थ था ? एक आप ही समर्थ थे।

स्त्रियो वा शूद्रा वा निगमपठने नो ह्यधिकृताः,
इति प्रोचुर्येऽज्ञा जड़तमधियः स्वार्थनिरताः।
तदुक्तिप्रत्युक्त्यै यतिवर ! 'यथेमाम्' इति यजुः,
श्रुतेः सा कल्याणी परमपितृवाणी निगदिता।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक १७)

स्त्रियों तथा शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है इस प्रकार जो अत्यन्त जड़ बुद्धि वाले, स्वार्थ में लीन अज्ञानी ब्राह्मण लोग कहा करते थे उनके कथन के खण्डनार्थ —हे संन्यासियों में श्रेष्ठ ! आपने 'यथेमां वाचं कल्याणी०'— इत्यादि यह परब्रह्मपिता की यजुर्वेदीय मन्त्रवाणी हमें बतलाई।

स्वकन्याभ्यः शिक्षामुपनयनदीक्षामथजनाः,
प्रयच्छन्ति स्वैरं वरनियमसिद्धान्तशरणाः।
विवाहं तासां ते विदधति सुयोग्यायुषि शुभम्,
नृदास्यं प्राप्तायां महदुपकृतं योषिति मुने।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक १८)

उत्तम वैदिक सिद्धान्त की छत्रछाया में आए हुए मानवगण स्वेच्छापूर्वक अपनी पुत्रियों को उपनयन संस्कार की दीक्षा तथा वेदधर्म की शिक्षा देकर सुयोग्य उम्र में उनका शुभ वैदिक विवाह संस्कार करते और कराते हैं। पुरुषों के दासीपन को प्राप्त हुई स्त्रियों के प्रति हे मुनिवर ! आपने बड़ा ही भारी उपकार किया है।

शिलाद्यर्चालीनं निगमकृतिहीनं गतबलम्,
विपद्ग्रस्तं दीनं विषयजलमीनं प्रतिकलम्।
प्रभूतैः पाखण्डैः सकलभुवनं नेतुमुदयम्,
विना त्वां कोऽशक्नोन्निगमवचसा सम्प्रति मुने।।

(दयानन्द लहरी, श्लोक २३)

पाषाणादि मूर्तिपूजा में निमग्न, वैदिक कर्मों से विहीन, बलवीर्यादि से रहित, विपत्तियों में फंसे हुए, दीन, विषय रूपी जल की मछली रूप बने हुए तथा नाना प्रकार के पाखण्डों से अत्यन्त पीड़ित हुए समस्त संसार को—हे मुनिवर्य ! इस समय वेदों के उपदेशों से अभ्युदय की ओर ले जाने के लिए आपके सिवाय भला कौन समर्थ हुआ ?

विदेशेदेशेऽपि श्रुतिविहितधर्मोन्नतिकृते,
समाजा आर्याणामिह विरचिता येन मुनिना।
आकार्षीद् यो लोकं गतहृदयशोकं सुकृतिभिः,
दयानन्दं वन्दे सकलभुवनानन्दनगुरुम्॥

(दयानन्द लहरी, श्लोक २६)

वेदोक्त धर्म की उन्नति के लिए जिन्होंने देश-देशान्तरों में आर्यसमाज की स्थापना की और जिन्होंने अपनी पुण्य क्रियाओं द्वारा जनों के हृदयों को शोकरहित बना दिया उन सकल जगत् को आनन्द देने वाले जगद्गुरु दयानन्द की मैं वन्दना करता हूं।

कियत्कष्टं सोढं मुनिवर ! सुधर्मोन्नतिकृते,
कियद्वारं धूर्त्तैर्गरलमपि संभोजितमिह।
विसोढा वाग्बाणाः प्रहरणमपि प्रापि दृषदाम्,
महात्मा धर्मार्थं गणयति न दुःखं न च सुखम्॥

(दयानन्द लहरी, श्लोक ४४)

मुनिवर्य्य ! उत्तम धर्म के लिए आपको कितना कष्ट सहन करना पड़ा, कितनी बार श्रीमान् को धूर्तों ने विष खिलाया, कितने अपशब्द, कितनी गालियां × और कितना पत्थरों का प्रहार आपने झेला, सचमुच महात्मा लोग धर्म के लिए सुख-दुःख की कुछ भी परवाह नहीं करते।

आदित्यब्रह्मचारी गुणिगणगणनास्वग्रगण्यो वरेण्यः,
वाग्मी वश्येन्द्रियाणामवनिसुरकुलोत्तंस आर्यावतंसः।
नाना पाखण्डिजालं जगति कुपथगं धर्मविद्योन्यषेधत्,
सन्मार्गस्योपदेष्टा जयति स जगदानन्दनो वन्दनीयः॥'

(दयानन्द लहरी, श्लोक ४६)

जो अखण्ड आदित्य ब्रह्मचारी, गुणवानों की गणना में अग्रगण्य, उत्तम वक्ता, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, ब्राह्मण कुल के भूषण तथा आर्यों के अलंकार हैं और जिन्होंने कुमार्ग की ओर जाने वाले नाना पाखंडियों के दलों को विदलित किया वे धर्मवेत्ता, सत्यमार्ग के उपदेशक, जगत् के आनन्ददाता तथा सबके वन्दनीय महर्षि दयानन्द विजय पा रहे हैं।

कविरत्न अखिलानन्द (बाद में पौराणिक बने) वे भी कई हजार श्लोकों के द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती का गुणगान किया है।

आपने अपनी पुस्तक में उन्हीं पुराने रटे-रटाये आक्षेपों को रख दिया है।

---

× श्री माधवाचार्य श्री कालूराम, गर्ग जी आदि अपशब्द और गालियां दे ही रहे हैं —(लेखक)

आपने 'जल्प' 'वितण्डा' और 'हेत्वाभास' के सहारे वैदिक सिद्धान्तों और महर्षि दयानन्द पर प्रहार किया है और मैंने प्रमाण, तर्क और युक्ति-युक्त सहित आपके सारे प्रहारों को छिन्न-भिन्न कर दिया है।

मैंने आपकी पुस्तिका का अक्षरशः सप्रमाण उत्तर दिया है। आपने जितनी गालियों व अपशब्दों की बौछार पूज्यपाद महर्षि दयानन्द जी महाराज के ऊपर की है उन्हें मैंने आपको सधन्यवाद वापस कर दिया है।

**शैवमत-परीक्षा—**

शैव बकरे के शब्द के समान बड़बड़ क्यों करते हैं ? महर्षि दयानन्द जी सरस्वती 'सत्यार्थप्रकाश' एकादश समुल्लास में शैवमत-खण्डन करते हुए लिखते हैं—

'···भस्म धारण करते, मिट्टी के और पाषाणादि के लिंग बनाकर पूजते हैं।

और हर-हर बं-बं और बकरे के शब्द के समान बड़बड़बड़ मुख से शब्द करते हैं···।'

इस पर चिढ़कर गर्ग जी पृष्ठ १२ में लिखते हैं—

'···वेदों के अर्थ एवं तात्पर्य को तनिक भी न समझने वाले दयानन्दी पोपों का वेद-वेद चिल्लाना और···क्या बक्कड़ों की बड़बड़ के समान बड़बड़ाना नहीं ? ···महा-मूर्खराट् दयानन्द शिवपुराण के यौगिक अर्थों को क्या जाने ? ···'

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेदों को भलीभांति समझा था और उनका भाष्य भी निरुक्त, निघण्टु और आर्ष व्याकरण के अनुसार सही है। श्री सायणा-चार्य, महीधर, उव्वटादि के अश्लील, यज्ञ में पशुवलि, गोवधादि भाष्य को पढ़कर आप का मस्तिष्क विकृत हो गया है तभी महर्षि दयानन्द जी के प्रति अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं।[1]

पुराणों में यौगिक अर्थ नहीं होते हैं वरन् वेदों में ही यौगिक होते हैं। पुराणों के यौगिक अर्थ हो ही नहीं सकते। यदि कोई करने का साहस करता है तो वह महामूर्खराट् ही कहलाएगा।

शिव बकरे के शब्द से क्यों प्रसन्न होते हैं इसका वर्णन पुराण में ही है। पुराण की उस घटना को लिख दिया तो गाली हो गई ? गर्ग जी की बुद्धि की बलिहारी है !

'सती के भस्म होने पर शिव के गणों ने शिव को सारा वृत्तान्त सुनाया। यह वृत्त सुनकर महादेव जी क्रोध में आए और अपनी एक जटा से वीरभद्र उत्पन्न किया और गणों की सेना का साथ देकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर दिया और विष्णु, इन्द्र आदि

१. द्रष्टव्य—मेरी पुस्तक 'ऋषि दयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन' (जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा द्वारा प्रकाशित।

सब देवताओं को परास्त करके भगा दिया और दक्ष का सिर काट कर वीरभद्र शिव के पास पहुंचे तब देवों ने मिलकर शिव की अत्यन्त स्तुति की तो शिव ने प्रसन्न होकर कहा, क्या चाहते हो ? ब्रह्मादि देवों ने कहा—महाराज कृपा करके दक्ष का पुनरुद्धार कर दीजिए। महादेव जी ने स्वीकार कर लिया। सब मृतकों को जीवित किया तो दक्ष का सिर न मिला तब एक बकरे का सिर काट कर दक्ष के धड़ पर जोड़ दिया जब दक्ष ने बकरे के मुख से बोलना आरम्भ किया तो महादेव जी बड़े हर्षित हुए।

मूल—'···अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीयपशोश्शिरः।
बस्तस्य संदधुश्शंभोः कामेनारं सुशासनात्॥२६॥
संधीयमाने शिरसि शंभु सद्दृष्टिवीक्षितः।
सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ लब्धः प्राणः प्रजापतिः॥२७॥

(शिवपुराण, रुद्र संहिता २, सती खण्ड २, अध्याय ४२)

अर्थ—शिव की आज्ञा से शीघ्र ही उस प्रजापति दक्ष के धड़ पर यज्ञिय प्रभु बकरे के सिर को जोड़ दिया। सिर के जड़ जाने पर शिव ने उसको प्रेम की दृष्टि से देखा तो जीवित होकर दक्ष प्रजापति शीघ्रता से सोए हुए की भांति खड़े हो गए।'

सम्प्रति पौराणिकों के मन्दिरों में जो शिव की पूजा होती है वह उनके लिंग (उपस्थेन्द्रिय) और पार्वती के भग (योनि) की होती है। जब कभी आर्यसमाज और पौराणिक समाज में इस विषय पर शास्त्रार्थ होता है तो पौराणिक पण्डित 'लिंग' और 'भग' का अन्य ही अर्थ लगाकर अपना पिण्ड छुड़ाने का प्रयास करते हैं। नीमच शास्त्रार्थ, में पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के प्रमाण प्रस्तुत करने पर श्री कालूराम शास्त्री ने इसी प्रकार प्रयास किया था। जमुई शास्त्रार्थ में भी इसी प्रकार प्रयास किया था। दोनों ही स्थलों में श्री कालूराम शास्त्री की मिट्टी पलीद हुई थी।

श्री माधवाचार्य शास्त्री ने 'लिंग' का अर्थ—'आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा आदि निराकार पदार्थ किया है।[६३] इसी प्रकार 'भग' का अर्थ 'माया प्रकृति ऐश्वर्य' [६४] किया है।

श्री कालूराम शास्त्री कल्पना करते हैं कि-लिंग क्या है ब्रह्माण्ड का नक्शा है।६५ 'जल हरी का अपभ्रंश जलहरी है। यह सप्तावरण का नक्शा है ब्रह्माण्ड के चारों

६३. 'ओंकार और शिवलिंग' द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २० 'पुराण दिग्दर्शन' द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३७७

६४. वही, पृष्ठ २२ तथा 'पुराण दिग्दर्शन' पृष्ठ ३७९।

६५. 'आयसमाज की मौत' प्रथम संस्करण पृ० २०३ तुलना करो 'पुराण कर्म' पूर्वार्द्ध द्वितीयावृत्ति, पृ० २६७ से २६९ तक।

तरफ सात आवरण रहते हैं वे ब्रह्माण्ड की चीज को आवरण से बाहर नहीं जाने देते उनका ही नक्शा जलहरी है।' ६६

इस सम्बन्ध में ऊहापोह से विचार किया जाता है।

पौराणिकों का यह कथन ठीक है कि 'लिंग' और 'भग' के अन्य भी अर्थ हैं पर 'शिवलिंग' की जो पूजा होती है वह उन अर्थों का द्योतक नहीं है, वरन् मूत्रेन्द्रिय से ही तात्पर्य है। इसकी पुष्टि पौराणिकों के मान्य ग्रन्थों से ही होती है। यथा—

'शम्भोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं, शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।
तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तु, तेषां सुखं कथमिहाऽपि परत्र चातः ॥

(देवीभागवत, स्क० ५ अ० १९ श्लोक १९)

**श्री नीलकण्ठ की संस्कृत टीका**—शंभोः पपातेति-यस्य शंभोः, सती वियोगारण्यतस्य भृगोः शापाल्लिगं पतितमिदं पुराणादिषु प्रसिद्धम् स्वलिंगपालनेपि यो न समर्थस्तं शिवं ये भजन्ति तेषामिह परत्र कथं सुखं भूयान्न कथमपीत्यर्थः ॥'

**विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत भाषा टीका**

'हे मात! सती के वियोग से महादेव के अरण्य मध्यस्थ ऋषियों के आश्रम में गमन करने पर भृगु मुनि के शाप से उनका लिंग पृथ्वी में गिरा, यह तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। अतएव जो अपने लिंग की भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है उन शम्भु को जो मनुष्य भजते हैं उनको इस काल और परकाल में किस प्रकार सुख होगा।'

यहां पर श्री कालूराम, श्री माधवाचार्य लिंग का क्या अर्थ लेंगे जबकि दो-दो पौराणिक विद्वान् मूत्रेन्द्रिय ही अर्थ लेते हैं।

इसी पुराण ने शिवजी को देहधारी भी बतलाया है तब यह कथा आलंकारिक भी नहीं हो सकती है।

राजा जनमेजय के प्रश्न करने पर व्यास जी उत्तर देते हैं कि—

'किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान्प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥ १५ ॥
रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।
'रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप।'
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते ॥१६॥

(देवीभागवत, स्क० अ० १३)

---

६६. 'आर्यसमाज की मौत' पृ० २०४-२०६।

**विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत टीका—**

'व्यास जी बोले, हे राजन् ! इन्द्र हो, वृसस्पति हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो या महादेव हो जो देह धारण करेगा उसको ही पूर्वोक्त अहंकार और लोभादि विकार दोष में लिप्त होना पड़ता है इसमें सन्देह नहीं ।।१५।। हे महाराज ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये सभी विषयानुरागी हैं। अतएव अनुरागी व्यक्ति क्या अकार्य नहीं कर सकता ? १६'

'आनर्तदेश मुनिजनाश्रय वन में किस प्रकार भगवान् शंकर नग्न वेश में पहुंचे। किस प्रकार मुनि पत्नियों का आचरण शिष्टता की सीमा पार कर गया, मुनिगण यह सब देखकर क्रुद्ध होकर बोले—'यस्मात्पाप त्वयास्माकं आश्रमोऽयं विडम्बितः।

तस्माल्लिगं पतत्वाशु तवैव वसुधातले ।।'

(पद्म पुराण, नागरखण्ड १-२२)

**पं० क्षितिमोहन सेन शास्त्री**, एम. ए. शान्ति निकेतन की टीका—'रे पाप, तूने चूंकि हमारे आश्रम को विडम्बित किया है इसलिए तेरा लिंग अभी भूपतित होवे। ६७

वेदों में कल्याणकारी परमात्मा को शिव शंकर, नाम से कहा गया है। पौराणिक शंकर, नरमुण्डमालाधारी, भस्मभूषणभूषित, वृषारोही, सर्पकण्ठ, नृत्यप्रिय नटवर, नन्दा-वेश्यागामी, अनुसूया धर्मविध्वंसक, हस्ते लिंगधृक्, की चर्चा चारों वेदों में कहीं नहीं है।

**शिवलिंग की स्थापना क्यों ?**

'दारू नाम वनं श्रेष्ठं तत्रासनृषिसत्तमाः। शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यान-परायणाः।६। ते कदाचिद्वने याताः समिधा हरणाय च। सर्वे द्विजर्षभाः शैवाः शिवध्यान-परायणाः।८। एतस्मिन्नतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः। विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः।६। दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः। स चेष्टां सकदक्षां च हस्ते लिंगं विधायरन्।१०।मनसा चप्रियं तेषां कर्त्तुं वै वनवासिनाम्। जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम्।११। तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः। विह्वला विस्मिताश्चा-न्याः समाजग्मुस्तथा पुनः।१२। आलिलिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्वा तथापराः। परस्परं तु संघर्षात्समग्नास्ताः स्त्रियस्तदा।१३। एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन्। विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः।१४। तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोयं कोयं तथाब्रुवन्। समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमाया विमोहिताः।१५। यदा च नोक्तवान् किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः। ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः।१६। त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्ग विलोपि यत्। ततस्त्वदीयं तल्लिगं पततां पृथिवी तले।१७। इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात्। अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः।१८। तल्लिगं चाग्निवत्सर्वं

६७. 'भारत वर्ष में जातिभेद' प्रथम संस्करण पृष्ठ ६६-६७

यद्ददाह पुरः स्थितम्। यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत्पुनः ।१९। पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च। भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ।२०। लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽति दुःखिताः। न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा ।२१। न ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः। दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्राह्मणं शरणं ययुः ।२२।…इत्युक्तश्च मुनीशैस्तैः सर्वलोकपितामहः। मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा।३१। आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराः शिवम्। योनिरूपाभवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ।३२।…पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तथा। सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ।४४। हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुयात्। योनिरूपेण मल्लिगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ।४५। पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा। तया धृतं च मल्लिगं द्रुतं शान्ति गमिष्यति ।४६।…प्रसन्ना गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च। पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ।४८।… हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवा शिवमित्यपि। पूजनात्तस्य लोकानां सुखं भवति सर्वथा ।५३।

(शिवपुराण कोटिरुद्र संहिता ४, अध्याय १२)

अर्थ—'दारु नामका एक वन था, वहां पर सत्पुरुष लोग रहते थे, जो शिव के भक्त थे। ६। वे कभी लकड़ियां चुनने के लिए वन में गये। वे सब के सब श्रेष्ठ ब्राह्मण शिव के भक्त तथा शिव का ध्यान करने वाले थे। ८। इतने में साक्षात् महादेवजी विकट रूप धारण कर उनकी परीक्षा के निमित्त आए। ९। दिगम्बर अति तेजस्वी विभूति भूषण से शोभायमान, कामियों के समान दुष्ट चेष्टा करते हुए, हाथ में लिंग धारण करके। १०। मन से उन वनवासियों का भला करने के लिए भक्तों पर प्रसन्न होकर शिवजी स्वयं प्रीति से उस बन में गए। ११। उनको देखकर ऋषि पत्नियां अत्यन्त भय भीतहो गयीं, व्याकुल तथा विस्मित हुईं, कई वापस आ गयीं। १२। कई आलिंगन करने लगीं, कई (स्त्रियों) ने हाथ में धार कर लिया तथा परस्पर के संघर्ष से वे स्त्रियां मग्न हो गयीं। १३। इसी अवसर में वे श्रेष्ठ ऋषि भी आ गए। इस प्रकार के विरुद्ध काम को देखकर वे दुखी हुए और क्रोध से मूच्छित हो गए। १४। तब दुख को प्राप्त हुए, कहने लगे—ये कौन हैं ? ये कौन हैं ? वे सबके सब ऋषि, शिव की माया से मोहित हो गए। १५। जब उस अवधूत दिगम्बर ने कुछ भी उत्तर न दिया तब वे परम ऋषि उस भयंकर पुरुष को यों कहने लगे। १६। तुम जो वेद के मार्ग को लोप करने वाला विरुद्ध काम करते हो इसलिए तुम्हारा यह लिंग पृथ्वी पर गिर पड़े। १७। उनके इस प्रकार कहने पर उस अद्‌भुतरूपधारी अवधूत शिव का लिंग उसी समय गिर पड़ा।१८। उस लिंग ने सब कुछ जो आगे आया अग्नि की भांति जला दिया वह जहां जहां जाता था वहां वहां सब कुछ जला देता था। १९। वह पाताल में भी गया, वह स्वर्ग में भी गया वह भूमि में सर्वत्र गया किन्तु वह कहीं भी स्थिर न हुआ।२०। सारे लोक व्याकुल हो गए तथा वे ऋषि अत्यन्त व्याकुल हुए। कोई देवता तथा ऋषि कल्याण को नहीं

प्राप्त हुए। २१। जिन्होंने शिवजी को नहीं जाना वे सम्पूर्ण देवर्षि दु:खित हुए और परस्पर मिलकर तत्काल ब्रह्मा की शरण में गए। २२। उन मुनीश्वरों के ऐसा करने पर सब लोकों के पिता ब्रह्माजी उस समय उन ऋषियों से स्वयं बोले। ३१।हे देवताओ ! देवी पार्वती की आराधना करके है पश्चात् शिवजी की प्रार्थना करो। यदि पार्वती योनि रूपा हो जावें तो वह लिंग स्थिरता को प्राप्त हो जावेगा। ३२। उस समय परम भक्ति से पूजित और सत्कार किए हुए शिवजी अति प्रसन्न होकर उन ऋषियों से बोले। ४४। हे समस्त 'देवताओ ! और ऋषियो ! आप सब मेरी बात आदर से सुनें यदि मेरा लिंग, योनिरूप से धारण किया जावे तो शान्ति हो सकती हैं। ४५। मेरे लिंग को पार्वती के बिना और कोई धारण नहीं कर सकता। उसे धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त हो जावेगा। ४६। पार्वती तथा शिव को प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार वह श्रेष्ठ लिंग स्थापित किया गया। ४८। वह पार्वती तथा शिव की प्रतिमा हाटकेश नाम से प्रसिद्ध हुई, उनके पूजन से सब प्रकार लोकों को सुख होता है। ५३।'

### श्री कालूराम शास्त्री की कल्पना :—

(क) स्त्रियों का शंकर से लिपटना नहीं लिखा किन्तु परस्पर में आलिंगन करना लिखा हुआ है।'

(ख) 'यहां पर अज्ञ लोग समझते हैं कि महादेव की मूत्रेन्द्रिय गिर गई, समझ की बलिहारी है। मूत्रेन्द्रिय नहीं गिरी किन्तु शंकर के हाथ में जो लिंग था उसको शाप हुआ है वह गिर गया……।'

(ग) 'शाप लिंग गिरने का हुआ है। कटकर गिरने का नहीं हुआ, मूत्रेन्द्रिय बिना कटे गिर नहीं सकती……

(घ) पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र इस लिंग को ज्योतिर्मयी लिंग के नामसे याद करते हैं। फिर हम इसको मूत्रेन्द्रिय कैसे मान लें ?' ६८

समीक्षा— (क) पौराणिक पं. कालूराम शास्त्री केवल कुतर्क करना जानते थे। यदि ऋषिपत्नियां शंकर से नहीं लिपटीं किन्तु भयभीत होकर परस्पर में लिपट गयीं, तब वे दूषित कैसे हुईं ? और ऋषियों को क्रोध करने की क्या आवश्यकता थी ?

(ख) शंकर के हाथ अन्य कोई लिंग न था, वरन् वे नग्न होकर अपने लिंग को ही हाथ से पकड़े हुए थे।

(ग) आपका यह शब्द जाल है। कटेगा तभी गिरेगा।

---

६८. 'पुराणवर्म' पूर्वार्द्ध द्वितीयावृत्ति पृ. २८४-२८५

(घ) पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कोई ऋषि, महर्षि तो थे नहीं जिनकी कल्पना को मान लिया जाय। श्लोक में कहीं ज्योतिर्मय लिंग की चर्चा तक नहीं है। यह तो आप दोनों की कल्पना है।

कूर्म पुराण अ० ३८ में भी आता है :—

'पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते। सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः। २ प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि। यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः। ३ चामीकरवपुः श्रीमान् पूर्णचन्द्रनिभाननः। मत्तमातंग गमनो दिग्वासा जगदीश्वरः। ७ जातरूपमयीं मालां सर्वरत्नैरलंकृताम्। दधानो भगवानीशः समागच्छते सस्मितः॥ योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययो हरिः। स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम्। ९ सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम्। शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नूपुरकद्वयम्। १० सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम्। दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र-तत्र पिनाकिनम्। माययामोहितानार्य्यः देवदेवं समन्वयुः। १४ विस्रताभरणाः सर्वा त्यक्त्वालज्जां पतिव्रता सहैव तेन कामार्तविलासिन्यश्चरन्ति हि। १४ ऋषीणां पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसः। अन्वागमन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीड़िताः। १५ गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणाः न ायकमेकमीशम्। दृष्ट्वा सपत्नीकम्तीवकान्तमिष्टं तथा लिंगितमाचरन्ति। १६ दृष्ट्वा नारी कुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम्। मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं संदधिरे भृशम्। २१ तं भर्त्स्य तापसाः विप्राः समेत्य वृषभ ध्वजम्। को भवानिति देवेशं पृच्छति स्म विमोहिताः। २४ सोब्रवीद् भगवानीशः तपश्चर्तुमिहागतः। तस्येतद्वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्याः मुनि पुंगवाः। ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वाभार्या तपश्चर। ताडयांचक्रिरे दण्डैर्लोष्ठिभिर्मुष्ठिभिर्द्विजाः। ३८ दृष्ट्वा चरन्तं नग्नं गिरीशं विकृतलक्षणम्। प्रोचुरेतम् भवल्लिगमुत्पाटय सुदुर्मते। ३९ कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोतिव शोभनः, भार्यया चारुसर्वांग्या प्रविष्टो नग्न एव हि। ५२ मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः। कन्यकानां प्रियो यस्तु दूषयामास पुत्रकान्। ५३ अस्माभिर्विविधा शापाः प्रदत्तास्ते पराहताः। ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिंगं तु विनिपातितः। ५४

अर्थ :—पूर्व काल में देवता और सिद्धों से सेवित सुन्दर वन में, पुत्र और स्त्रियों के सहित ऋषिगण तप कर रहे थे। विधि के अनुसार प्रवृत्त अनेक कर्म करते हुए अनेक यज्ञ और तप कर रहे थे। भगवान् शिव जिसका शरीर सोने के समान, मुख पूर्ण चन्द्र के समान, चाल मतवाले हाथी के समान थी, सोने की माला धारण किए सब रत्नों से विभूषित नंगे होकर मुस्कराते जा रहे थे। संसार के उत्पत्तिकर्त्ता जो अनन्त अव्यय विष्णु थे स्त्री वेष धारण करके उनके पीछे जा रहे थे।

स्त्री वेष धारी विष्णु का मुख चन्द्र के समान उज्ज्वल, उनका स्तन मोटा और

ऊंचा-ऊंचा है। दोनों पैर में नूपुर बज रहे हैं पीत वस्त्र धारण किए हुए हैं हंस के समान जिसकी चाल है जो कामियों के मन को मोहित करने वाला है।

विश्वेश शंकर जहां-जहां जाते थे वहां-वहां छल से मोहित स्त्रियां उनके पीछे-पीछे जाती थीं। युवती स्त्रियां जिनके शरीर पर के आवरण सरक कर गिर गए थे, उन्हीं के साथ लज्जा परित्याग कर घूम रही थीं, और ऋषियों के तरुण लड़के, काम से पीड़ित होर विष्णु के पीछे-पीछे घूमने लगे। सब स्त्रियां उन्हें देखकर गाती और नृत्य करती थीं और आलिंगन करती थीं।

स्त्रियां, पुत्रों तथा केशव को देखकर ऋषि लोग बड़े क्रोधित हुए उन्हें डांट डपट करके शंकर के पास आये और पूछा कि आप कौन हैं? शंकर ने कहा कि मैं तप करने के लिए आया हूं। उनकी बात सुनकर भृगु प्रभृति ऋषियों ने वस्त्र पकड़कर कहा कि स्त्री को त्यागकर तप करो।

तब शिव ने कहा कि तुम लोग तो स्त्री के साथ हो, मुझे त्यागने को क्यों कहते हो। ऋषियों ने कहा कि व्यभिचारिणी स्त्री को छोड़ देना चाहिए। हम लोगों की स्त्रियां ऐसी नहीं हैं इस लिए नहीं छोड़ते। शंकर ने कहा कि मेरी स्त्री मन से भी व्यभिचार नहीं करती। यह सुनकर ऋषियों ने कहा कि तुम मिथ्या बोलते हो यहां से चले जाओ। इस कहा सुनी में ऋषिगण शिव को 'यष्टि मुष्टि प्रहार' आर्थात् लाठी और मुक्कों की चोट करते हुए बोले—'तू यह लिंग उत्पाटन कर।, शंकर ने कहा कि यदि मेरे लिंग से तुम्हें इतना ही द्वेष है तो लो मैं उत्पाटन कर देता हूं यह कह कर उन्होंने उत्पाटन कर दिया।

इसके पश्चात् वहां से सब लोग गायब हो गए और वशिष्ठ के आश्रम में गए। अरुन्धती ने उनकी पूजा की और उनके शरीर पर चोट देखकर औषधि लगा दी। उनके जाते ही उत्पात होने लगे। पृथ्वी कांप उठी,सूर्य का तेज क्षीण हो गया। ग्रह प्रभाहीन हो गए। ऋषिगण डरके मारे ब्रह्मा के पास गए और हाल कह सुनाया।

कोई अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति सर्वांग सुन्दरी स्त्री के साथ नंगा हो पवित्र दारु वन में आया और सब स्त्रियों को मोह लिया और कन्याओं और पुत्रों को दूषित कर दिया। हम लोगों ने उसे गाली दीं और मारा पीटा और उसका लिंग गिरा दिया कृपया बतलावें वह कौन था?

ब्रह्मा ने कहा, तुम लोगों के बल पौरुष तप को धिक्कार है। जिसको यति लोग चाहते हैं। जिसके लिए लोग यज्ञ करते हैं उस शिव की तुम लोगों ने उपेक्षा की।

इसी प्रकार शिवलिंग के सम्बन्ध में रहस्यमयी कथा अन्यत्र भी पायी जाती है। यथा—

'शिव पुराण, धर्म संहिता के दसवें अध्याय में देखा जाता है कि शिव ही आदि देवता हैं; ब्रह्मा और विष्णु को उनके लिंग का आदि मूल अन्वेषण करने जाकर हार माननी पड़ी (१६-२१)। देवदारूवन में सुरतप्रिय शिव विहार करने लगे (धर्म संहिता, १०,७८-७९)। मुनि पत्नियां काममोहित होकर नानाविधि अश्लीलाचार करने लगीं (वही, १११-१२८)। शिव ने उनकी अभिलाषा पूरी की (वही' १५५)। मुनिगण काममोहिता पत्नियों को संभालने में व्यस्त हुए। (वही, (१६०)। पर पत्नियां मानीं नहीं (१६१)। फलतः मुनियों ने शिव पर प्रहार किए (वही, १६२-१६३)। इत्यादि। अन्य सब मुनि-पत्नियों ने शिव को कामार्त्त होकर ग्रहण किया था; पर अरुन्धती ने वात्सल्य भाव से पूजा की (वही,१७८) भृगु के शाप से शिव का लिंग भूतल में पतित हुआ। (वही, १८७)। भृगु धर्म और नीति की दुहाई देने लगे वही, (१८८-१९२)। अन्त में मुनिगण शिवलिंग की पूजा करने को बाध्य हुए (वही, २०३ -२०७)।

यही कथा स्कन्दपुराण, महेश्वर खण्ड, षष्ठाध्याय में है और ऐसी ही कथा लिंग पुराण (पूर्व भाग, ३७ अध्याय,३३-५०) में भी पाई जाती है। इसी तरह वायुपुराण के ५५ अध्याय में शिव की कथा कही गई है। ६९

'...अस्मिश्चैव तु नो राजा नास्ति कश्चिन्महावने। वस्ते छिनन्ति लिंग वै परदाररतस्य तु। १ परदाररतस्यापि निर्लज्जस्य दुरात्मनः। शिश्नस्योत्कर्तनं कार्यं नाऽन्तो दंडः कदाचन। २ छित्वा वृषणं लिंगं गुरुदारतः स्वयम्। गृहीत्वांजलिनामतु संगच्छेन्नैर्ऋती दिशम्।३ अयं पुर्नानिर्विवेको दुराचारो यद्मतिः। स्वयंदंड्यस्ततो ऽस्माभिः क्षेत्रदारहमो पतः।४ आततायी भवेद्वध्य द्विजेवाप्यथवा मुनिः। निघ्नन्तु शस्त्रवाणैस्तु नास्ति तत्र विचारणा। ५ मुनिना तत्र शापेन पपात गहने वने। बहुयोजन-विस्तीर्णं लिंगपरमशोभनम्। ६ तत्राटव्या सती देहे विजय नाम नामतः। तस्मान्नि-मग्ने भूम्यां तु दिव्यतेजसि भास्वरः।

[शिवपुराण ; धर्म संहिता, अध्याय १०,श्लोक १८० से १८४ त]

## विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र की टीका :—

क्योंकि इस स्थान में ऐसा राजा तो है नहीं जो परदाराओं में प्रीति करने वाले का लिंगच्छेदन कर दे। परदाराओं में प्रीति करने वाले निर्लज्ज दुरात्मा का लिंग ही काटना चाहिए। उसको इसके सिवा दूसरा कोई दण्ड नहीं है। जो गुरुदारा से रति करे वह अपने वृषण और लिंग स्वयं छेदनकर अंजलि में ले मरने को नैर्ऋत्य दिशा की ओर

६९. आचार्य पण्डित क्षितिमोहनसेन शास्त्री, एम० ए० कृत 'भारत वर्ष में जाति भेद' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६६.

चला जाय। परन्तु यह दुराचारी दुर्मति तो ज्ञान हीन है सो क्षेत्ररूप हरण करने वाले को हमें स्वयं दंड देना चाहिए। ब्राह्मण या मुनि या जो आततायी हो वह बध्य है। राजा उसको शस्त्र वा बाणों से मार डाले। विचार न करें। इस प्रकार उन मुनियो के शाप से बहुत योजन के उस वन में वह लिंग पतित हुआ।' ७०

यहां भी लिंग से तात्पर्य मूत्रेन्द्रिय से ही है। मिश्रजी ने यहां लिंग का अर्थ 'ज्योतिर्लिंग' नहीं किया है।

## क्या शाक्त मत वैदिक है ?

महर्षि दयानंद जी सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में शाक्त मत की आलोचना करते हुए उनके पंच मकरादि का खण्डन किया है। इसका गर्ग जी यौगिक अर्थ लगाने का द्राविड़ी प्राणायाम कर रहे हैं।

मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन ये पंचमकार हैं। इनका अन्यथा अर्थ करना दूसरों को मूर्ख बनाना है।

महर्षि दयानन्द जी स्पष्ट लिखते हैं—

"...मद्यमांसादि यथेष्ट खाते पीते भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते। कभी-कभी काली आदि के लिए किसी आदमी को पकड़मार होमकर कुछ-कुछ उसका मांस खाते भी हैं।

जो कोई भैरवी चक्र में जावे मद्य मांस न पीवे, न खावे, तो उसको मार होम कर देते हैं। उसमें से जो 'अघोरी' होता है, वह मृत मनुष्य का भी मांस खाता है। अजरी-वजरी करने वाले विष्ठा मूत्र भी खाते-पीते हैं।"

समीक्षा—क्या महर्षि दयानन्द जी का लिखना अशुद्ध है। प्रत्यक्ष के लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। मृत मनुष्य का मांस खाना, मल-मूत्र को खाना-पीना का यौगिक अर्थ करेंगे ? क्या इसका अर्थ रसगुल्ला करेंगे या जो सेवन करते हैं वे इनको रसगुल्ला समझकर सेवन करते हैं ?

जो लोग पंचमकरादिका गूढ़ार्थ करते हैं उनके सम्बन्ध में भारत रत्न, महामहोपाध्याय, डॉ० पाण्डुरङ्ग वामनकाणे एम० ए० लिखते हैं--

"लोकमर्यादा विरुद्ध तन्त्रिक आचारों के समर्थक अपेक्षाकृत अधिक या कम कुलार्णव की भांति ही पंचमकारों के विषय में व्याख्याएं एवं तर्क उपस्थित करते हैं। उदाहरणार्थ, अपने ग्रन्थ 'प्रिसिपुल्लज् ऑव तन्त्र' भाग २, की भूमिका में आर्डर एवालोन (सर जॉन वुड्रौक) ने परानन्द सूत्र (पृ० १७) में प्रयुक्त 'पीने की आलौकिक

७०. श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई में मुद्रित व प्रकाशित, तुलना करो, पाक्षिक पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' वाराणसी, वर्ष २, दिनांक १३ नवम्बर, १९३० ई., संख्या ६, पृ. ६

अर्थ (गुप्त या गूढ़ अर्थ) की व्याख्या की है—"यह व्याख्या अति गम्भीर एवं उत्कृष्ट रूप से मानसिक है किन्तु किसी प्रकार भी प्रसंगति में बैठने वाला नहीं है।

प्रस्तुत लेखक यह जानना चाहता है कि कितने तन्त्र लेखकों एवं कितने तन्त्रिकों ने उर्ध्वायन के सिद्धांत को, नये 'तन्त्रज्ञ ऐज ए वे आॅव रीयलिग्रेशन' (आत्मज्ञान के लिए तन्त्र-विधि, कल्चरलहेरिटेज आॅव इण्डिया, जिल्द ४ पृ० २३३-२३५) में उल्लिखित है, पंचमकारों का आलम्बन करके अनुमान किया है। प्रथम प्रश्न है—'एक अति गम्भीर एवं उच्च आनन्द की अवस्था के वर्णन के लिए अश्लील भाषा का प्रयोग क्यों आवश्यक था ? मान लिया जाय कि वुड्रोफ ने मद्य की जो व्याख्या की है वह ठीक है, तो मत्स्य एवं मांस की क्या व्याख्या होगी ? समर्थकों ने जो गूढ़ार्थ 'मत्स्याशी' एवं 'मांसाशी' के विषय में दिया है वह भूल भूलैया मात्र है, उससे कुछ अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। कुलार्णव परानन्द सूत्र तथा कतिपय अन्य ग्रंथों में सदैव साधारण अर्थ में ही मद्य, मांस एवं मत्स्य ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। कुलार्णव० (२।१२१६) ने मनु (९।९३ सुरा वै मलमन्नानां आदि) को उद्धृत किया है। तीन प्रकार की सुरा बनाने की विधि बताई है (५।१५-२१) और कहता है कि मद्यों में सुरा १२ वाँ प्रकार है और अन्य ११ प्रकार के मद्य (मद्य) पनस, अंगूर, खजूर, गन्ना आदि से बनते हैं (५।२९) कुलार्णव ने कौल आचार में मद्य पीने के ढंग पर प्रकाश डाला है (११।२२-३५)। इसमें मांस के तीन, प्रकार बताये हैं—नभचर जीवों (पक्षियों) के, जलचर के एवं स्थलचर के। स्वच्छन्द तन्त्र (कश्मीर शैवागम पर एक महान् प्रामाणिक ग्रंथ) में आया है कि भांति-भांति की मछलियां एवं मांस तथा ऐसे भोजन जो चूसे जाते हैं एवं पिस जाते हैं। शिव की प्रक्रिया पर चढ़ाए जाने चाहिए और इस विषय में कंजूसी नहीं की जानी चाहिए। परानन्द सूत्र के उद्धरण यह भली भांति प्रकट करते हैं कि मद्य, मांस एवं मैथुन यह साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। परानन्द सूत्र (पृ० ८०-८३) ने साधक द्वारा किए जाने वाले मैथुन का ऐसा अश्लील वर्णन किया गया है कि यहां उसका उद्घाटन करना असंभव है। देवी-पूजा सविस्तार होती थी, सोलह उपचार किए जाते थे तो ऐसी स्थिति में मद्य, मांस एवं मैथुन को देवी-पूजा के लिए क्यों अनिवार्य माना गया ? कुलार्णव एवं अन्य तन्त्रों ने भेद की प्रशंसा की है, वैदिक मन्त्रों का प्रयोग किया है, तथा उपनिषदों एवं गीता के वचन उद्धृत किए हैं तब भी दुःख की बात है कि उन्होंने इस बात का ध्यान नहीं रखा कि सामान्य जनता पर उनके कथनों एवं आचारों का क्या प्रभाव पड़ सकता है। मध्यकाल के कुछ ऐसे कौल-सम्प्रदाय सम्बन्धी ग्रंथ हैं, जो मद्य, मांस खाने एवं मैथुन करने का वर्णन अश्लील ढंग से करते हैं और देवी-पूजा के लिए आवश्यक मानते हैं और बल पूर्वक कहते हैं कि इससे मुक्ति मिलती है।...

आडम्बरहीन लोगों के दृष्टिकोण से एक अत्यन्त विद्रोहपूर्णकृत्य है चक्र-पूजा

(घेरे में होने वाली पूजा)। बराबर संख्या में पुरुष एवं नारी, बिना जाति भेद के, यहां तक कि सन्निकट रक्त सम्बन्धी जन भी गुप्त रूप से रात्रि में मिलते हैं और एक वृत्त में बैठते हैं (देखिए कुलार्णव निर्णय ८।७६)। चक्रों का एक छन्द (चित्र) के रूप में देवी चित्रित होती है। चक्र का एक नेता होता है। नियम ऐसे थे कि केवल वीर स्थिति में कुशल व्यक्ति ही सम्मिलित किए जाते थे और पशु भाव वाले (साधारण जन लोग जो अपने पशुत्व पर विजय नहीं पा सके हैं। सर्वथा त्याज्य थे। यह कैसे विश्वास किया जा सकता था कि 'चक्र' के नेता में वे उत्तम गुण विद्यमान हैं जो ऊपर उल्लिखित हैं और वह नेता उन गुणों से युक्त लोगों को ही सम्मिलित करेगा? उपस्थित स्त्रियों में सभी अपनी-अपनी कंचुकी को एक पात्र (या आधार या स्थान) में रख देती थीं और उपस्थित पुरुषों में प्रत्येक उनमें से किसी एक को उस रात्रि के लिए चुन लेता था। (अर्थात् पात्र में से कंचुकी को उठाकर उसकी मालकिन को चुन लेता था)। इस चक्र ने तन्त्रिकाओं को अवश्य भर्त्सना एवं निन्दा का पात्र बनाया होगा। इसी से कुलार्णव० ने अपनी सम्मति दी है कि चक्र पूजा गुप्त रीति से होनी चाहिए। श्री चक्र में जो कुछ भला या बुरा होता है। उसे जनता में कभी नहीं कहना चाहिए, यह (परमात्मा का) अनुशासन है; चक्र पूजा की घटना का उल्लेख कभी भी नहीं होना चाहिए।'...श्री अच्युतराय मोदककृत 'अवैदिकधिक्कृति' (अवैदिक प्रयोगों एवं आचारों की भर्त्सना) में पंचमकारों के सम्प्रदाय की कटु आलोचना की गई है। देखिए 'तामापोरेवाला कमेमोरेशन वाल्यूम' (डकन कालेज रिसर्च इंस्टीच्यूट, पृ० २१४-२२०। जहां अच्युतराय मोदक पर निबन्ध है। उनका ग्रंथ १८१५ ई० में प्रणीत हुआ था।...

'काली विलास तन्त्र (१०।२०-२१) में शाक्त भक्त को परनामी के साथ संभोग की अनुमति दी है, किन्तु ऐसा व्यवस्था दी है कि वीर्यपात न होने पाए; उसने दृढ़ता के साथ यह कहा है कि यदि साधक ऐसा कर पाता है तो वह सर्व सिद्धीश्वर हो जाता है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके लेखक ने ऐसी लज्जास्पद बात शंकर द्वारा पार्वती से कहलवाई है। इस प्रकार के वक्तव्यों से समाज अवश्य दूषित हो गया होगा और यदि तन्त्रों के विरोध में बातें कही जाती रहीं है तो वे ठीक ही थी। यदि कभी किसी एक व्यक्ति ने अलौकिक शक्तियां प्राप्त भी कर ली और आध्यात्मिक रूप से पर्याप्त ऊपर उठ गया है वे सैकड़ों ऐसे पथभ्रष्ट, छली, कपटी, कदाचारी एवं व्याभिचारी, व्यक्ति रहे होंगे जिन्होंने अबोध लोगों, विशेषतः नारियों को पथभ्रष्ट कर दिया होगा।"...७१

इसीलिए महर्षि दयानन्द जी ने 'शाक्त मत' की कटु आलोचना की है। अतः उन पर कीचड़ उछालना आपका छिछोरापन व उच्छृङ्खला है।

---

७१. धर्म शास्त्र का इतिहास "पञ्चमभाग, पृ० ४३ से ४८ तक [सन् १९७३ ई० में उत्तर प्रदेश शासन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

## कबीर पन्थ

गर्ग जी पृष्ठ १६-१७ में 'कबीर पंथ के प्रवर्तक के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी के' 'सत्यार्थ प्रकाश' एकादश समुल्लास से वाक्यों को लिखकर लिखते हैं—"कबीर साहित्य का कोई भी अध्येता दयानन्द के इस मिथ्या आरोपों की पुष्टि नहीं कर सकता किन्तु दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़कर हर व्यक्ति हठात् कह उठेगा कि "जब वेदज्ञ विद्वानों ने दयानन्द को कापड़ी होने के कारण वेद पढ़ाने से इन्कार कर दिया...।'

समीक्षा—गर्ग जी ने सभी सम्प्रदाय, पंथवालों की झूठी वकालत करने का ठका लिया है। क्या कबीर पन्थ वैदिक है? क्या कबीर साहब ब्राह्मण थे या गर्ग या जुलाहा? क्या वे भी गर्ग थे जो इतनी व्यर्थ की बातें लिखते हुए और महर्षि दयानन्द जी को कापड़ी लिखते हुए लज्जा नहीं आती है। पीछे उनके ब्राह्मण होने का प्रमाण दिया गया है।

कबीर साहब के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी ने जो कुछ लिखा है वह नितान्त सही है। देखिए—

## कबीरपंथ के प्रवर्तक महात्मा कबीरदास का वर्ण-निर्णय—

कबीरपंथ में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही हैं। कबीरपंथ के प्रवर्तक महात्मा कबीरदास कौन थे, इनका वर्ण क्या था इस पर अन्वेषण करना अनिवार्य है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती कबीरपंथ की आलोचना करते हुए लिखते हैं—"(प्रश्न) कबीरपंथी तो अच्छे हैं? (उत्तर) नहीं। प्रश्न क्यों अच्छे नहीं? पाषाण मूर्तिपूजा का खन्डन करते हैं। कबीर साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में फूल हो गए। (उत्तर) ...'क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां थी जो फूलों से उत्पन्न हुआ? और अन्त में फूल हो गया? यहां जो यह बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे। एक समय थोड़ी-सी रात्रि थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकरी फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उसको उठा ले गया, अपनी स्त्री को दिया, उसने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था, किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिए गया उसने उसका अपमान किया। कहा कि हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पंडितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तम्बूरे लेकर गाता था। भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फंस गए। जब मर गया तब लोगों ने उसे सिद्ध बना लिया। ७२

---

७२. 'सत्यार्थ प्रकाश' गकादश समुल्लास।

इस पर टिप्पणी करते हुए स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ महाराज लिखते हैं—

इस विषय में एक कबीरपंथी का दूसरे कबीरपंथी के नाम एक पत्र मनन करने योग्य है। 'श्रीमते रामानन्दाय नमः' ता० ३-११-४५, काशी, स्वस्तिश्रीसर्वोपमायोग्यजि काशी से महन्त रामचरणदास जी को महन्त खूबदास जी का दण्डवत् स्वीकार हो। अत्र कुशलं तत्रास्तु। आगे समाचार यह है कि पत्र आपका आया। उस पत्र के प्रश्नों के अनुकूल खास कबीर मठ से प्रामाणिक उत्तर समझकर इसमें लिखा जा रहा है। कबीरदास जी की उत्पत्ति—श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज, काशी में एक बगीचा था, उसमें तपस्या कर रहे थे। उस समय लक्ष्मी जी उनकी परीक्षा के लिए आई और बगीचे से फूल उतार कर चलने लगीं। तो स्वामी जी ने पूछा क्यों फूल तोड़कर ले जा रही हो। सो लक्ष्मीजी ने कहा ये फूल नहीं हैं यह तो एक लड़का है। ऐसा कहकर चली गई। नारायण जी ने पूछा क्यों परीक्षा लिए। तो बोली हां। नारायण जी ने कहा, कपड़े में क्या है? लक्ष्मी जी ने कहा—फूल। फिर देखे तो लड़का। इस तरह की उत्पत्ति सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना गया है। और भी अनेक तरह से भी लोग इनकी उत्पत्ति बतलाते हैं। १४५५ में उत्पत्ति, १४५६ में शिष्य और १५७५ में शरीर त्याग हुआ। गादी काशी में कबीर चौरा है। द्वादशार्थ का उत्तर कबीर दास जी के १३ शिष्य हुए। उसमें तेरहवें शिष्य रामदास जी हुए। उनको कबीरदास जी स्वामी रामानन्द जी की सेवा में करके कबीरदास जी तीर्थयात्रा को चले गए। इसलिए वही आधा कबीर अर्थात् राम कबीर कहलाये। और जो शेष बारह शिष्य थे वही बारह कबीर कहलाए। इस प्रकार द्वादशार्थ कबीर कहलाये। राम कबीर के आचार्य श्री स्वामी अनन्त रामानन्दाचार्य जी हैं। दूसरी तरह की उत्पत्ति कुमारी कन्या के गर्भ से हुई है। यह भी कलंक के भय से कमल के पत्ते पर शयन कराई फिर नेमा नीरू के पालन करने से जुलाहे कहलाये। रामानन्द स्वामीजी एक बार गंगा स्नान को गए बाहर मृत्तिका न होने के कारण गंगा के अन्दर से मिट्टी निकालने लगे। एक सीप भी हाथ में आ गई, उसी सीप में लड़का निकला अर्थात् स्वामी जी के कर में उत्पत्ति इस तरह से भी प्रमाण है। परन्तु पहली उत्पत्ति सर्वश्रेष्ठ है जो लक्ष्मी जी से हुआ है। लक्ष्मी जी उस लड़के को एक तालाब में कमल के पत्ते पर रखकर आई तो नीरू जुलाहा ले आया और पालन-पोषण किया। जो अर्ध रामकबीर हैं उन्ही से हम लोगों का खान-पान का व्यवहार है ऐसा समझिएगा। इति शुभम्।' (यह पत्र एक कबीरपंथी महन्त ने दूसरे कबीरपंथी महन्त को लिखा है।)७३

७३. 'सटिप्पण: सत्यार्थ प्रकाश:' प्रथमावृत्ति पृ० ३२२.

विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से कबीर के उत्पन्न होने की गाथा पं० रामचन्द्र शुक्ल, ७४, डा. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ७५, पं० शिवशंकर मिश्र ७६, डा. पी. द. बर्थ्वाल ७७, और श्री एच. एम. गुप्त ७८ लिखते हैं।

**कबीरपंथियों की धारणा**—एक किंवदन्ती के अनुसार सं० १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को जब कि मेघमाला से गगनतल समाच्छल था, बिजली कौंध रही थी, कमल खिले थे, कलियों पर भ्रमर गूंज रहे थे, मोर, मराल, चकोर कलरव करके किसी के स्वागत की बधाई गा रहे थे। उसी समय पुनीत काशी-धाम के तरंगायमान लहर तालाब (लहरतारा) के अंक में विकसित एक सुन्दर कमल पर आकाश मण्डल से एक महापुरुष उतरा, महापुरुष वही कबीर बालक था, जिसने कुछ घड़ियों पीछे पुण्यवती नीमा की गोद और भाग्यवान् नीरू का सवन समलंकृत किया।

'कबीर कसौटी' में कबीरदास जी के सम्बन्ध में एक पंक्ति मिलती है 'सेवक होकर उतरे इस पृथ्वी माहीं।'

संभवत: कबीरपंथियों ने इस पंक्ति के आधार पर उपर्युक्त कथानक की कल्पना की है।

कबीरपंथी हिन्दू 'कबीर' शब्द की व्युत्पत्ति 'करबीर' शब्द के द्वारा बतलाते हैं जिसका अर्थ 'हाथ से उत्पन्न हुआ' है।

महाराज रघुराजसिंह कृत 'भक्तमालारामरसिकावली में यह घटना अंकित है :

रामानन्द रहे जगस्वामी, ध्यावत निसदिन अन्तरजामी।
तिनके ढिग विधवा इक नारी, सेवा करैं बड़ो श्रम धारी।
प्रभु इक दिन रह ध्यान लगाई, विधवातिय तिनके ढिग आई।
प्रभुहिं किया बंदन बिन दोषा। प्रभु कह पुत्रवती भरिघोषा।

---

७४. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ६२.
७५. 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत' पृ० ७७ (वैष्णविश्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स' का श्री महेश्वरी प्रसाद प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा अनुवादित, अगस्त १९६७ ई० में 'भारतीय विद्या प्रकाशन, पो० बाक्स १०८ कचौड़ी गली वाराणसी द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)
७६. 'भारत का धार्मिक इतिहास' पृ० २६७ (आर. डी. बाहिती एण्ड को. न० ४ चोर बागान कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण
७७. 'योगप्रवाह' पृ० १०७ (संवत् २००३ वि० काशी विद्यापीठ वाराणसी)
७८. 'विश्वधर्म-परिचय' पृ० ६२३ (सन् १९५४ ई. श्री एच. राय गुप्त, वामनजी रोड, सहारनपुर द्वारा प्रकाशित प्रथमावृत्ति)

तब तिय अपनो नाम बखाना, पह विपरीत दियो बरदाना।

स्वामी कह्यो निकसी मुख आयो, पुत्रवती हरि तोहिं बनायो

ह्वै है पुत्र कलंक न लागी, तव सुत ह्वै है हरि अनुरागी।

तव तिय कर फुलका परि आयो, कछु दिन में ताते सुत जायो।

जनत पुत्र नभ बजे नगारा, तदपि जननि उर सोच अपारा।

सो सुत लै तिय फेक्यो दूरी, कढ़ी जुलाहिन तहं इक रूरी।

सो बालकहिं अनाथ निहारी, गोद राखि निज भवन सिधारी।

लालन-पालन किय बहुभांती, सेयो सुतहिं नारि दिन-राती।

'ज्ञानसागर—बोध' में कबीर और धर्मदास के वार्तालाप के द्वारा यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि 'प्रत्येक युग में कबीरदास ने जन्म ग्रहण किया है और करते हैं।

'ज्ञानसागर' नामके एक कबीरपंथी ग्रन्थ में कबीर साहब के पूर्वजन्म में ब्राह्मण होने की बात पर जोर न देकर, इनके पोषक पिता नीरू को ही पूर्व जन्म का ब्राह्मण कहा गया है। उक्त ग्रन्थ के अनुसार जब नीरू जुलाहा बालक कबीर को लेकर अपने घर गया और यहां पर बच्चे का बिना दूध पिए भी, हृष्ट-पुष्ट होना देखा, तब उसे महान् आश्चर्य हुआ और उसने स्वामी रामानन्द के पास जाकर पूछा, जिस पर उक्त स्वामी जी ने उत्तर दिया—

पूर्वजन्म तैं ब्राह्मण जाती, हरि सेवा कीन्हसि बहु भांती।

कछु तुव सेवा हरि की चूका, तातै भया जुलाहा को रूपा।

प्रीति प्रभु गहि तोरौं लीन्हा, तातें उद्यान में सुत दीन्हा।

('कबीर-सागर' बम्बई पृ० ७४)

वास्तव में तुम अपने पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे, किन्तु किसी प्रकार भगवान् की सेवा में भूल चूक होने के कारण तुम्हें जुलाहा होना पड़ा है। स्वामी रामानन्द द्वारा कहलाए गए इस वचन से ग्रन्थकर्ता का उद्देश्य कबीर साहब के पोषक पिता का पूर्वजन्म में ब्राह्मण होना सिद्ध लक्षित होता है।

**इन प्रमाणों पर विचार**—उपर्युक्त सभी प्रमाण किंवदन्तियों के आधार पर है। शीप, फूल, कर, से उत्पत्ति सृष्टि-क्रम के विरुद्ध होने से गप्प प्रतीत होता है।

कबीर साहब को ब्राह्मण सिद्ध करने के लिए एक अलौकिक कथा गढ़ ली गई है जो बे सिर पैर की है।

उपर्युक्त कथाओं को सत्य मानने में दो कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। प्रथम यह कि जब लोगों को यह विदित हो गया कि विधवा ने आशीर्वाद के फलस्वरूप पुत्र

उत्पन्न किया है तब उस बालिका को लोकापवाद का क्या भय था जो उसे लहरतारा तालाब के निकट छोड़ आई। दूसरी आपत्ति यह है कि जब उस महिला ने अपने पुत्र होने की बात छिपाने के लिए अपने प्रिय पुत्र का परित्याग किया तब लोगों को उसके पुत्र जानने की बात ही कैसे विदित हुई जो उन्होंने यह कथा गढ़ ली।

स्वामी रामानन्द जी के आशीर्वाद में इतनी शक्ति थी कि विधवा को पुत्र हो सकता था तो क्या उनको इतना भी ज्ञान नहीं था कि वह विधवा है। अतः यह दन्त-कथा है।

कुछ लोगों का कथन है कि 'यदि कबीर विधवा के पुत्र न होते, तो, वह फेंके क्यों जाते ? और यदि यह बात सत्य न होती तो इतनी प्रबल किंवन्दती कैसे प्रचलित हो जाती ?

जो लोग ऐसा कहते हैं उनसे पूछा जा सकता है कि क्या यह आवश्यक है कि एक विधवा ही अपने बच्चे को कलंक भाजन होने के भय से फेंक आवे। संभव है, किसी नवविवाहिता बालिका जिसका अभी अपने पति से समागम न हुआ हो, अपना पाप गुप्त रखने के लिए अपने बालक का परित्याग किया हो।

कबीर के जीवन के साथ विधवा पुत्र होने की कथा जोड़ने का संभवतः एक कारण यह भी हो सकता है कि कबीर के जीवनकाल में उनके मत के बहुत से विरोधी थे। संभव है उन लोगों ने उस समय उनके मत की प्रचारधारा को अवरुद्ध करने के लिए जनता में यह प्रसिद्ध कर दिया हो कि कबीर पाप-संतान है, अतएव उनका मत ग्राह्य नही है और इस प्रकार उन लोगों ने जनता के चित्त पर से कबीर का प्रभाव हटाने का प्रयत्न करने के लिए ही ये सब कपोल कल्पनाएं रच डाली हों।

श्री नाभादास जी ने अपने 'भक्तकाल' में केवल एक छप्पय कबीरदास पर लिखा है। उसमें इनकी जाति अथवा इनके जन्म के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं मिलता। श्री प्रियादास ने अपनी टीका में लिखा है कि जब आकाशवाणी द्वारा कबीर को यह आदेश किया गया कि तुम जाकर रामानन्दजी के शिष्य बनो, तब उसके उत्तर में कबीर ने कहा कि 'देखें नहीं मुख में से मान कै म्लेच्छ मोकों।'

इससे कबीर का मुसलमान (म्लेच्छ) होना स्पष्ट प्रकट होता है।

कबीर साहब के विधवा-पुत्र के सम्बन्ध में डा. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर खण्डन करते हैं—'यह विवरण कितना ऐतिहासिक और कितना काल्पनिक है, कहना कठिन है। परन्तु प्रारम्भ में वे एक मुसलमान जुलाहे थे। इस बात को तथ्य माना जा सकता है।···श्री वेस्टकोट इस बात को असंभव नहीं मानते कि कबीर मुसलमान और सूफी दोनों ही रहे हों।' ७९

---

७९. 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत' पृ. ७८

**कबीर साहब के जुलाहा होने के प्रमाण—**

कबीर साहब ने स्वयं अपनी जाति का परिचय 'जुलाहा' कहकर दिया है। यहां 'कबीर ग्रन्थावली' ८० से कुछ अवतरण दिए जाते हैं—

(क) 'तननां बुननां तज्या कबीर, रामनामं लिख लिया सरीर। (पृ० ६५)

(ख) 'जुलहै तनि बुनि पान न पावल, फारि बुनी दस ढांई हो।' (पृ. १०४)

(ग) 'जाति जुलाहा मोत का धीरै हरषि गुणरमै कबीर।' (पृ० १२८)

(ख) 'तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा, चिह्नि न मोर गियाना।' (पृ. १७३)

(ङ) जाति जुलाहा नाम कबीरा, बति वनि फिरौं उदासी।' (पृ.१८१)

(च) 'कहत कबीर मोहि भगत उमाहा, कृतकरणी जाति भयाजुलाहा।' (पृ० १८१)

(छ) ज्यूं जल में जल पैसि न निकसै यूं ढरि मिल्या जुलाहा।' (पृ. २२१)

(ज) 'गुरु प्रसाद साधकी संगति, जग जोतै जाइ जुलाहा।' (पृ. २२१)

कबीर के (च) उदाहरर्ण से यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व कर्मानुसार ही इन्हें जुलाहा कुल में जन्म मिला 'भया' इस अर्थ का पोषक है।

'छांडे लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया।' (बीजक पृ. ६०५)

'कहैं कबीर रामरस मति जोलाहादास कबीरा हो।' (प्रथम ककहरा, चरण १५)

जाति जुलाहा क्या करै हिरदै बसे गोपाल।
कबिर रमैया कंठ मिलु चुकै सरब जंजाल॥

[आदि ग्रन्थ पृ० ७३७, साखी ८२]

कबीर साहब के मुसलमान होने के सबसे अधिक प्रामाणिक उदाहरण 'आदि गुरुग्रन्थ साहब ८१ में मिलता है। उक्त ग्रन्थ में श्री रैदास के जो पद संग्रहीत है, उन में पद इस प्रकार है—'मलारवाणी भगत रविदास जी को सतगुरु प्रसादि'।३।१

मलार। हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपतिता समतुलि नहीं आनकोऊ।

एक ही एक अनेक अनेक होइ बिसथरिको आनरे भूरिपूरि सोऊ।

---

८०. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग द्वारा सन् १९२८ ई. में प्रकाशित।

८१. 'आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी' पृ०६९८ (भाई मोहनसिंह वैद्य, तरनतार, अमृतसर १९२७ ई०, बुधवार)

इस ग्रन्थ का प्रमाण श्री मोहनसिंह ने कबीर की जाति के निर्णय करने के लिए अपनी पुस्तक '**K**abir his biography' (आत्माराम एण्ड संस, लाहौर १९३४ ई० में प्रकाशित) में भी लिया है।

कहाहु। जाकै भगवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ तासकी जाति आछापछापा।
बिग्रास यहि लेखीग्रै सनक महि पेखीग्रै नाम की नामन्ना सपतदीपा। १
जाकै ईदि बकरीदि कुलगऊ रे वधु करहि मानो अहि सख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहूरे लोक परसिध कबीरा। २
जाकै कुटुम्ब के ढढ् समढोर ढोंवत फिरहि अजहु बनारसी ग्रासपास।
अचार सहित विप्र करहि डडउति तिनि तनै रविदास दासानदासा। ३।२

रैदास के इस पद में नामदेव, कबीर और स्वयं रैदास का परिचय दिया गया है। नामदेव, छीपा (दर्जी) जाति के थे। कबीर जाति के मुसलमान थे जिनके कुल में ईद बकरीद के दिन गऊ का वध होता था, जो शेख शहीद और पीर को मानते थे। उन्होंने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनों लोकों में यश की प्राप्ति की। रैदास चमार जाति के थे जिनके वंश में मरे हुए पशु ढाये जाते हैं। और बनारस के निवासी थे।

पं० व्रजमोहन शर्मा एम० ए०, आर० ए० एस० लिखते हैं--'इनके (रामानन्द के) प्रधान शिष्य महात्मा कबीरदास १५ वीं शताब्दी में हुए थे जाति के जुलाहे थे। परन्तु धार्मिक प्रेम इनमें इतना अधिक था कि उसी के कारण ये महात्मा कहलाये।' ८२

एक इतिहास प्रेमी लिखते हैं—(आचार्य रामानन्द जी का वर्णन करते हुए)' उन्होंने पांच जातियों में से १२ शिष्य चुने। उनमें से एक मोची, एक नाई और सबसे बड़ा कबीर नाम का एक जुलाहा था।' ८३

सद्गुरु गरीबदास जी साहब की वाणी (सम्पादक श्री अजरानन्द गरीबदास जी रमताराम, आर्य सुधारक छापाखाना, बड़ौदा) में 'पारखका अंग' ।५२ के अन्तर्गत कबीर साहब का जीवन चरित्र दिया हुआ हैं। प्रारम्भ पृष्ठ १९६ में लिखा है—

गरीब सेवक होयकरि ऊतरे इस पृथ्वी के मांहि।
जीव उधारन जगत गुरु बार-बार बलिजांहि।। ३८०
गरीब काशीपुरी कस्त किया, उतरे अवर उवार।
गरीब कोटि किरण शशिमान सुधि, आसन अवर विमान।
परसन पूरण ब्रह्मकूं; शीतल पिंजरू प्राण।। ३८२

---

८२. 'भारतवर्ष इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ १२६ (सन् १९२७ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित)
८३. 'भारतवर्ष का इतिहास' पृष्ठ ७५ (संवत् १९७९ वि० में ज्ञानमण्डल कार्यालय, वाराणसी से प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

गरीब गोद लिया मुख, चूंकि करि, हेमरूप झलकन्त।
जगर मगर कामा करैं, दम के पदम अनन्त ।। ३८३
गरीब काशी उमटा गुलभया, मोमन का घरघेर।
कोई कहे ब्रह्म विष्णु है, कोई कहे इन्द्र कुबेर ।। ३८४

इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान (मोमिन) ही को दर्शन देकर उसके घर में जन्म ग्रहण किया। और मोमिन ने शिशु कबीर का मुंह चूमकर उसके अलौकिक रूप के दर्शन किये।

प्रो० रामरास गौड एम० ए० लिखते हैं—'कबीर पन्थ—इस पंथ के प्रवर्तक कबीरदास जी मुसलमान जुलाहे के लड़के कहे जाते हैं। यह बनारस के रहने वाले थे। इनका स्थान कबीर चौरा आजकल प्रसिद्ध है।' ८४

'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' चतुर्थ संस्करण के उपोद्‌धात के पृष्ठ ८१ में श्री रामचन्द्र जी का वर्णन करते हुए लिखा है—'इसने शूद्रादि वर्ण से १३ शिष्य बनाये। कोई मोची, कोई नाई, और एक प्रसिद्ध शिष्य धुनियां कबीर साहेब था।'

'प्रायश्चित—विचार ८५ पृष्ठ ४७ में लिखा है—'कबीर साहिब अलीतूद वाफिन्दा के बेटे थे। रामानन्द ने शुद्ध करके चेला बनाया था।'

पं० शिवशंकर मिश्र लिखते हैं—'रामानन्द के अनेक शिष्य थे जिनमें कबीर, रयदास, पीपा, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, भावानंद, धन्ना, सेन, महानन्द, परमानन्द, और श्रियानन्द यह बारह प्रधान थे। इनमें से कबीर, जुलाहे, रयदास चमार, पीपा राजपूत, धन्ना जाट और सेन नापित थे।' ८६

राजस्थान केसरी कुंवरचांदकरण जी शारदा एडवोकेट लिखते हैं—'कबीर जी जुलाहे थे।' ८७

श्री गोपाल प्रसाद व्यास 'साहित्य रत्न' सम्पादक 'साहित्य सन्देश' आगरा लिखते हैं—कबीर मुसलमान थे, किन्तु हृदय की विशालता के कारण इन्होंने हिन्दू धर्म को भी बड़ी दृष्टि से देखा।' ८८

पुनः यह प्रसिद्ध है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ था। कबीर जुलाहे थे।

---

८४. 'हिन्दुत्व' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७३४.
८५. सन् १६०५ ई० में ऐंग्लो ओरियण्टल प्रेस, लखनऊ में मुद्रित।
८६. 'भारत का धार्मिक इतिहास' पृष्ठ २२४.
८७. 'शुद्धि-चन्द्रोदय' प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७२.
८८. 'हिन्दी साहित्य के इतिहास की प्रश्नोत्तरी' पृष्ठ ४१ (सन् १९४१ ई० में हिन्दी भवन, लाहौर द्वारा प्रकाशित).

यह स्वयं उनकी कविता से सिद्ध है। वे मुसलमान ही थे, उन्हें हिन्दू कहना बिल्कुल निराधार है। ८९

पं० गणेश बिहारी मिश्र, पं० श्याम बिहारी मिश्र एम० ए० पं० शुकदेव बिहारी बी० ए० 'मिश्रबन्धु' लिखते हैं—

आपकी माता और पिता के नाम नीमा और नीरू थे। वे जाति के जुलाहे थे। और काशी धाम में रहते थे। किसी किसी का यह भी कथन है कि नीमा और नीरू कबीर साहब के पालक मात्र थे और इनका जन्म हिन्दू (ब्राह्मणी) विधवा के उदर से हुआ था, जिसने लोकलाज के भय से इन्हें लहरतारारा के तालाब के पास डाल दिया था। नीमा और नीरू ने इन्हें उठाकर पाला। हमको समझ पड़ता है कि यह कथा मन गढ़न्त है। कबीर साहब वास्तव में नीमा और नीरू के ही पुत्र थे। इन्होंने अपने को काशी का जुलाहा बार-बार कहा, किन्तु ब्राह्मणी का मातृत्व कहीं नहीं वर्णन किया। यथा—तू ब्राह्मण में काशी का जुलाहा बूझी मार गियाना। काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेतार।'

इन तथा सैकड़ों पदों से कबीर साहब वास्तविक जुलाहे समझ पड़ते हैं। ९०

प्रो० वेणीप्रसाद जी एम० ए० लिखते हैं—'रामानन्द के शिष्य मुसलमान जुलाहे कबीर ने भक्ति सिद्धांत को और भी बढ़ाया।' ९१

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी; शास्त्राचार्य लिखते हैं—'जिन दिनों कबीरदास जुलाहा जाति को अलंकृत कर रहे थे उन दिनों ऐसा जान पड़ता है कि, इस जाति ने अभी एकाध पुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था।' ९२

'कोरी' की कल्पना—'कोरी' या कुली तन्तुवाय हैं। ये चमारों की श्रेणी के हैं। इनमें से कुछ अपने को 'कोली राजपूत' कुछ 'हिन्दू तन्तुवाय' कहते हैं। अब ये लोग बौद्ध हो गए हैं। ये हिंदू जुलाहे हैं।

कुछ लोगों ने कल्पना की है कि कबीर भी 'कोरी' थे। कबीर साहब के दो पदों में ८३ क्रमशः आए 'कहै कबीरा 'कोरी' तथा 'सूतै सूत मिलाये कोरी' को देखकर डा० बर्थ्वाल ने कल्पना की है कि—'कोरी ही मुसलमान धर्म में दीक्षित हो जाने पर

---

८९. वही पृष्ठ ४३.

९०. 'हिन्दी-नवरत्न' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४४३-४४४.

९१. 'संक्षिप्त सूरसागर' पृष्ठ १३ (सन् १९२७ ई० इंडियन प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण).

९२. 'कबीर' पृष्ठ ४ (मार्च १९४२ ई० में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालन, बम्बई द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

९३. 'कबीर चरित्र बोध' (बोधसागर, बम्बई संवत् १९६३) पृष्ठ ६.

जुलाहे हो गए' तथा 'उक्त कोरियों को जुलाहा हुए अभी इतने अधिक दिन नहीं हुए थे कि 'कोरी' कहलाना वे निरादर समझें।'

इसके सिवाय कबीर साहब द्वारा योग साधना सम्बन्धी अनेक प्रसंगों के उल्लेख किए जाने के कारण वे अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'मेरी समझ से कबीर भी किसी प्राचीन तथा कोरी, किन्तु तत्कालीन जुलाहा कुल के थे जो मुसलमान होने के पहले जोगियों का अनुयायी था।' ९४

इस पर पं० परशुराम चतुर्वेदी एम० ए० एल० एल० बी० लिखते हैं—डा० बर्थ्वाल की कल्पना का आधार इसी कारण कबीर साहब द्वारा अपने लिये किया गया 'कोरी' शब्द का उक्त प्रयोग तथा इन 'जुगी' जाति वाले लोगों बिचारों का उनके साथ साम्य ही प्रतीत होता है। कोई ऐतिहासिक प्रमाण अथवा सामाजिक कारण उक्त सम्मिश्रण के सम्बन्ध में वे नहीं देते।' ९५

## जुलाहा होने के अन्य प्रमाण

कबीर साहब की रचनाओं से स्पष्ट जान पड़ता है कि वे जाति के जुलाहे थे। ९६ ये अपने को 'जाति जुलाहा नाम कबीर' ९७ तथा 'कबीर जुलाहा' ९८ बतलाते हैं और कभी-कभी 'काशी का जुलाहा' ९९ द्वारा अपने निवास स्थान के साथ-साथ भी यहीं परिचय देते हैं। इनका 'हम घरि सूतु तनहिं नित ताना' १०० तथा 'बुनि-बुनि आप आपु पहिरावउ १०१ भी सूचित करता है केवल जाति से ही जुलाहे न थे, बल्कि इनके घर उक्त जाति का व्यवसाय भी हुआ करता था। इन्होंने 'तनना बुनना' १०२ त्यांग कर भक्ति निरत हो अपने समु जगु आनि तनाइओ ताना' १०३ बिशिष्ट 'कोरी';

---

९४. 'योग प्रवाह' पृष्ठ १२६.

९५. 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' पृष्ठ १४९ (संवत् २००८ वि० भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण).

९६. वही, पृष्ठ १४५.

९७. 'कबीर-ग्रंथावली' पद २७०, पृष्ठ १८१. (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९२८ ई०).

९८. वही, पद १३४, पृष्ठ १३१.

९९. 'गुरुग्रन्थ साहिब' राग आ० २६ तथा ग० ५ (भाई गुरदियाल सिंह, अमृतसर)

१००. वही राग आ० २६.

१०१. वही, राग भैरउ ७.

१०२. वही, राग गूजरी, २.

१०३. वही, राग आ० ३६.

'राम' को अन्त में पहचान लेने का वर्णन भी 'जुलाहे घर अपना चीन्हा' कहकर ही किया है और इनकी इस अध्यात्मिक सललता की ओर संकेत हुए इनके समकालीन समझे जाने वाले रैदास एवं धन्ना ने भी इन्हें 'जुलाहा' ही माना है। इसके अतिरिक्त कबीर साहब जाति के अनुसार जुलाहा होने की पुष्टि में गुरु अमरनाथ जी कहते हैं—'नामा छीपा कबीर जोलाहा पूरे गुर ते गति पाई' (गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरीराग महला ३ पद २२).

श्री अनन्तदास कहते हैं—'काशी बसै जुलाहा एक, हरि भगतिन की पकरी टेक।' १०४

श्री रज्जबजी कहते हैं—'जुलाहा ग्रमे उत्पन्यो, साध कबीर।' १०५

सन्त पीपाजी अपनी एक रचना में कहते हैं—

'जाकै ईदि बकरीदी नित गऊ रे।
वध करैं मानियै सेष सहीद पीरा।
बाप वैसी करी पूत ऐसी घरी।
नांव नवखंड पर सिध कबीरा। १०६

अर्थात्—कबीर साहब के कुल में ईद व बकरीद के त्योहार मनाये जाते थे, और गोवध होता था। शेख शहीद तथा पीरों का मान था।

'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार श्री प्रियादास ने बतलाया है कि जब इनके लिए आकाशवाणी हुई कि तुम स्वामी रामानन्द के शिष्य बन जाओ, तब इन्होंने 'देखें नहीं मुख मेरी मानिके मलेच्छ मोको' १०७ कहा था।

अपने को कबीर ने 'मलेछ' (मुसलमान) कहा है।

डॉ० बदरीनारायण श्री वास्तव एम० ए०, पी० एच० डी०, यू० पी० ई० एस., सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी नरेश गवर्नमेंट कालेज, ज्ञानपुर शोध प्रबन्ध में लिखते हैं—

'कबीर के हृदय में रामानन्द जी ने वही ज्योति जला दी थी। जुलाहा कबीर स्वामी जी की ही उदारया बूंद पीकर सन्त कबीर हो गया, अमर हो गया। सेन, धन्ना रैदास, आदि ऐसे ही उनके कृपापात्र थे।

---

१०४. 'कबीर साहब की परचई' तुलना करो 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' पृ० १४६
१०५. 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' पृष्ठ १४६.
१०६. वही, पृष्ठ १४७.
१०७. श्री रूपकला, 'भक्तमाल' (भक्ति सुधा स्वाद तिलक सहित) लखनऊ सं० १९८३ वि०, पृष्ठ ४८६.
१०८. 'रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' पृष्ठ ३१५, (सन् १९५७ ई०, हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण.)

श्री दुलारे लाल जी भार्गव लिखते हैं—'कबीर मुसलमान थे। कबीर रामानन्द के शिष्यों में सर्वोत्तम माने जाते हैं। कबीर वैष्णव गुरु के शिष्य होते हुए भी वैष्णव न थे। उन्होंने एक नया धर्म चलाया।'१०९

लाला कन्नोमल जी एम. ए. अपने 'कुछ सामाजिक प्रश्न' शीर्षक लेख ११० में लिखते हैं—'कबीरदास, रयदास, धन्ना आदि साधु अछूत जातियों में से थे, लेकिन इन्होंने अपने पवित्र जीवन और ईश्वर भक्ति से हिन्दुओं में सन्तों की पदवी पाई।'

लाला सीताराम जी की धारणा है कि 'कबीर' 'अली' नाम के मुसलमान के पुत्र थे। जो एक जलाशय (कदाचित् लहर तालाब) के निकट रहा करते थे। अतएव 'नीर' शब्द के आधार पर, पानी के निकट रहने के कारण इनका नाम 'नीरू पड़ गया था। कबीर की माता नीमा या नियामा थी।'१११

फारसी के इतिहास 'दविस्तां' में जो कि कश्मीर के मोहसिन फैनी द्वारा अकबर के शासनकाल में लिखा बताया जाता है, लिखा है, कि 'कबीर जुलाहे और मुवाहिद (एकेश्वरवादी) थे और अपने लिए वह हिन्दू और मुसलमान बहुत से संतों और फकीरों के यहां गए, और अन्त में स्वामी रामानन्द के शिष्य हुए। ११२ अबुलफजल ने भी इस बात की पुष्टि की है कि कबीर जुलाहा और मुवाहिद थे।' ११३

वेस्कट महोदय का कथन है कि 'इस बात का किसी ने खंडन नहीं किया। उस समय में 'मुवाहिद' शब्द का प्रयोग मुसलमान लोग हिन्दुओं के लिए नहीं करते थे।' ११४

इससे भी स्पष्ट है कि जब कबीर के लिए 'मुवाहिद' शब्द का प्रयोग उस समय किया गया है, तो वास्तव में कबीर मुसलमान रहे होंगे, हिन्दू नहीं।

---

१०९. मासिक पत्रिका 'सुधा' लखनऊ की साहित्य संख्या' (१) वर्ष २, खण्ड १, अगस्त सन् १९२८ ई., संख्या १, पृष्ठ २४०, कॉलम १.

११०. मासिक पत्रिका ,सरस्वती प्रयाग' भाग ३०, खण्ड १, जून १९२९ ई. संख्या ६, पृष्ठ ६८९.

१२१. मासिक पत्रिका 'माधुरी' लखनऊ, वर्ष १४ खण्ड १, अक्टूबर १९३४ ई०, अङ्क ३, पृष्ठ ३५२, 'क्या कबीर एक विधवा के पुत्र थे ?' शीर्षक लेख.

११२. वही, पृष्ठ ३५५.

११३. वही, पृष्ठ ३५५-

११४. वही, पृष्ठ ३५५.

श्री रजनीकान्त जी शास्त्री बी. ए., अपने 'गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ? शीर्षक लेख में लिखते हैं११५—

'जुलाहा वंश-प्रदीप महात्मा कबीरदास को जन्म का ब्राह्मण लिख मारना तथा उनका जन्मतः ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए कपोल कल्पित विलक्षण घटनाओं का आश्रय लेना इस भारतीय चित्त-वृत्ति का एक ज्वलंत उदाहरण है।'

श्रीमती उमा नेहरू लिखती हैं—कबीर साहब के जन्म और जीवन के बारे में बहुत मतभेद हैं किन्तु अधिकतर विद्वानों की सम्मति है कि इनका जन्म बनारस या उसके आसपास सन् १४४० ई. मे हुआ। यह मुसलमान माता-पिता की सन्तान थे।' ११६



'अछूतों की कठिन समस्या तो उनके प्रम्प्रदाय के गुरु ही ने हल कर दी थी जब उन्होंने कबीर (मुसलमान और नीच मुसलमान) जुलाहे और रैदास चमार को दीक्षा देने में संकोच न किया।' ११७

'The Cultural heritage of India' Vol. II, PP. 251 में लिखा है—

"It is said that his first twelve disciples were; Ravidas the cobbler, Kabir tये weaver, Dhanna the jat peasant, Sena the barber.'

अर्थात्—'यह कहा जाता है कि उनके (श्री रामानन्द जी) प्रथम १२ शिष्य थे, रविदास मोची कबीर जुलाहा, धन्ना, जाट, सेन नापित।'

'Tये Imporial gaztteer of India' Vol I, new edition. PP. 425 में लिखा है— A weaver by caste, Kabir the taught spiritual cpualily of all men.'

अर्थात्—'जुलाहा जाति के कबीर सभी मनुष्यों को समान रूप से आध्यात्मिक विद्या की शिक्षा देते थे।'

Shree W. Crooke (श्री डब्लू क्रूक) लिखते हैं—

'Kabir was a weaver by caste. 118

अर्थात्—'कबीर जुलाहा जाति के थे।'

Mr. Vencot A Smith, C I. E., M. A, D. Litt., M R. A. S (श्री

११५. मासिक पत्रिका 'चांद' प्रयाग वर्ष ७, खण्ड २, जुलाई १९२९ ई., संख्या ३, पृष्ठ ३२८, कॉलम २.

११६. मासिक पत्रिका 'माधुरी' लखनऊ, वर्ष १, सन् १९२२ ई., संख्या ३, पृष्ठ,२३५.

११७. वही, वर्ष २, खण्ड १, सन् १९२३ ई., संख्या ५, पृ०५४४.

118. 'The north western provinces of India' PP. 250 (1897 A. D; London edition.)

वेंकोट ए. स्मिथ लिखते हैं—And Muhammandan weaver, namely, Kabir.' 119

अर्थात्—(श्री रामानन्द के ११ शिष्यों की चर्चा करते हुए) 'और एक मुसलमान जुलाहा कबीर नाम से।'

'Kabir is usually said to have been, jolaha or Mohomedan weaver. 120

अर्थात्—'कबीर को जुलाहा या मुसलमान जुलाहा कहा जाता है।

इस प्रकार ३५ से भी अधिक विद्वान् एक स्वर से कबीर साहब को मुसलमान जुलाहा मानते हैं।

शिक्षा—कबीर साहब अपठित थे। प्रसिद्ध है कि इन्होंने कभी 'मसि कागद छूयो नहीं कलम गह्यो नहिं हाथ।'

अतः महर्षि दयानन्द जी ने जो कुछ कबीर साहब के सम्बन्ध में लिखा है नितांत सत्य है।

कबीर पन्थियों में हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं। इनकी कई गद्दियां हैं।

अपढ़ कबीरदास जी के मूर्ख शिष्यों ने आर्यसमाज पर भी प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया है।

श्री काशी साहेब द्वारा निर्मित श्री लाला साहेब द्वारा संशोधित व श्री रामस्वरूपदास जी द्वारा सम्पादित 'निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' नामक ५७६ पृष्ठ का एक ग्रंथ 'आचार्य कबीर पन्थ, गद्दीपन श्री कबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी बुरहानपुर (निमाड (खण्डवा) मध्यप्रदेश) के सन् १९६३ ई. में प्रकाशित हुआ है। इसका चतुर्थ संस्करण है। 'तिमिर भास्कर' पुस्तक यहीं से प्रकाशित हुई है जिसमें आर्यसमाज पर आक्षेप है।

श्री काशी साहेब ने पृष्ठ ४५६ से ४६१ तक में पुनर्विवाह व वियोग की कटु आलोचना करते हुए महर्षि दयानन्द जी महाराज के लेख पर आक्षेप किया है। मनुस्मृति प्रक्षिप्त श्लोक (अ० ९ श्लोक ६४, ६५, ६६) से नियोग का खण्डन करने का कुप्रयास किया है।

यदि किंवदन्ति को सत्य माना जाय तो कबीर विधवा के पुत्र ठहरते हैं। लालजी उनको व्यभिचार, नियोग क्या कहेंगे ? कबीर पंथी प्रायः इस पर विश्वास करते हैं।

---

119. The Oxford history of India' PP. 260 (1919 A. D. London edition).

120. 'Hindu Castes and Sects' PP. 495.

अतएव मुझे कबीरदास जी के सम्बन्ध में ऊहापोह से लिखना पड़ा है कि उनके मूर्ख शिष्य देख लें। मेरे मित्र डा. श्रीराम आर्य, कासगंज ने उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का मुंह तोड़ उत्तर 'कबीर मतगर्व—मर्दन' पुस्तक 'वैदिक साहित्य प्रकाशन, कासगंज जिला एटा, उ० प्र० से प्रकाशित' में दिया है।

आज तक डा. श्रीराम आर्य की पुस्तक का प्रत्युत्तर कबीर पन्थी नाम धारी महन्तों ने नहीं दिया है।

अतः गर्ग जी ने कबीरपन्थ की झूठी वकालत करने का प्रयास किया है।

## नानक पथ

गुरुनानक व उनके अनुयायी सिक्खों (शिष्यों) की झूठी वकालत करके गर्ग जी ने उनको भड़काने का कुप्रयास किया है। आज पंजाब में जो घटनाएं हो रही हैं उनमें गर्ग जी का लेख अग्नि में घृत का काम देगा।

यह सत्य है कि गुरुनानक व अन्य गुरु संस्कृत के विद्वान न थे। महर्षि दयानन्द जी ने ऐसी बात लिख दी तो उनका क्या अपमान हो गया ? मूर्ख को विद्वान्, दरिद्र को धन्ना सेठ, कहना अशुद्ध है पर मूर्ख को मूर्ख, दरिद्र को दरिद्र कहना ही सही है।

महर्षि जी लिखते हैं—'···नानक जी का आशय तो अच्छा था, परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी।···वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते, तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्भो' क्यों लिखते ?

और इसका दृष्टान्त उनका बनाया 'संस्कृति स्तोत' है।

## महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख की पुष्टि—

"पढ़ पुस्तक सन्ध्यावादम्। सिक्त पूजिस बगल समाधम्। मुख झूठ विभूषण सारम्। त्रैपाल निहाल विचारम्। गलमालां तिलक ललाटम्। दोय धोती वस्त्र कपाटम्। जो जानस ब्रह्मं कर्मम्। सब भोकट निश्चय कर्मम्। कह नानक निश्चा ध्यावै। विन सतगुरु वाट न पावै। [श्लोक सहंस्कृति महल्ला १] महल्ला १ जिन वचनों के साथ आता है। वे प्रथम गुरु श्री नानक जी की रचना हैं। अब पांचवें गुरु अर्जुनदास जी की संस्कृत रचना भी देखिए—'कतं च माता कतं च पिता कतं च वनिता विनीत सुतः। कतं च भ्रात मीत हि बांधव कतं च मोह कुटुम्ब ते कतं च चपल मोहिनी रूप ने सन्त त्याग करोति। कतं च सगं भगवान् सिमरण नानकलब्ध अच्युतः। (श्लोक सहंकृति महल्ला ५)

इनसे पता लगता है कि वे लोग कैसे संस्कृत के विद्वान् थे ?

गर्ग जी, पृष्ठ १८—'दयानन्द सिखों के पवित्र ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहब के विषय में कहते हैं कि गुरुनानक देव के पश्चात् अन्य गुरुओं ने उसमें मिथ्या कथाएं घड़कर मिला दी···।'

'गुरुग्रन्थ साहब के विषय में यह कहना कि छोटी-छोटी पुस्तकों को एकत्र करके जिल्द बंदवादी, दयानन्द द्वारा सिखों के पवित्र ग्रन्थ का घोर अपमान है।…'

समीक्षा—यहां गर्ग जी ने 'गुरुग्रंथ साहब' के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी के शब्दों को लिखकर सिखों को भड़काने का प्रयास किया है कि उन्होंने पवित्र ग्रन्थ का घोर अपमान किया है।

'गुरु ग्रंथ साहब' गुरुमुखी लिपी में कई गुरुओं, सन्त, महात्माओं, मुस्लिम फकीरों की वाणियों का संग्रह मात्र है। वह वेद के समान ईश्वरीय ज्ञान का स्थान तो नहीं ले सकता। गर्ग जी किसी स्वार्थवश उसको भले ही वेदों के समान मान लें।

'गुरु ग्रन्थ साहब' में निम्नांकित सज्जनों की वाणियां है—

'गुरु नानक जी, गुरु अङ्गद जी, गुरु अमरदास जी, गुरु अर्जुन जी, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु हरगोविन्द जी की धुनें, कबीर, फरीद, नामदेव, धन्ना, साधना, सैण, पीपा, रविदास, परमानन्द, मीराबाई, सूरदास, वेणी, त्रिलोचन, जयदेव, रामानन्द, सत्ता, बलवन्ड, सुन्दर, जमाल, पतंग, सम्मन; मूसन, ईश्वर, गोरख, भर्तरी, गोपीचन्द, सत्तरह भट्ट।

'आदि ग्रन्थ के संकलन कर्त्ता पंचम गुरु अर्जुन देव जी ने इसमें प्रथम पांचों गुरुओं की वाणी, कबीर, नाम देव…तथा अन्य व्यक्तियों की वाणी को संग्रहीत किया।

'सूरज प्रकाश' के अनुसार जहां प्रथम गुरु की वाणी भाई मनसुख ने लिखी। यहां दूसरे गुरु की पेड़े मोखे तथा तीसरे गुरु अमरदास की मोहन जी के पुत्र सहस राम ने। इस प्रकार यह वाणी तथा कुछ अन्य वाणी मोहन जी के पास गोविन्दवाल में विद्यमान थी।

द्वितीय गुरु अंगद ने केवल श्लोक ही लिखे हैं, वह भी गुरु नानक की वाणी से स्पष्टतः ही प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार तब से अब तक हजारों हस्तलिखित बीड़ें हुई हैं। बहुत-सी प्राचीन है। कई बीड़ों पर गुरुओं के हस्ताक्षरों के चिह्नस्वरूप तीर चिह्न अंकित हैं।

शुद्ध गुरु वाणी ट्रस्ट ने ज्ञानी प्यारा सिंह तथा संत हरभजन सिंह को छापने बीड़ को 'आदि ग्रन्थ' से शुद्ध करने का कार्य सौंपा।

गुरु गोविन्द सिंह के बाद गुरु ग्रन्थ साहब में हेर फेर नहीं है।

दमदमा साहिब वाली बीड़ या प्रचलित गुरु ग्रन्थ साहब में कबीर का एक शब्द भी बदला गया है और गुरु तेगबहादुर जी की वाणी अधिक मिला दी गई है। इस उलटा गुरुगोविन्द सिंह के सिखों ने धीर मल्लियों का बहिष्कार कर दिया।"

---

७ द्रष्टव्य—डा० धर्मपाल मैनी एम० ए० पी० एच० डी० कृत "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब-एक परिचय" पुस्तक, [हिन्दी भवन, जालन्धर से प्राप्य].

## रामस्नेही पथ

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं—

"……स्त्रियों के संग बहुत रहते हैं क्योंकि राम जी को 'राम की' के बिना आनन्द नहीं मिलता।"…

पुन —"नाम तो धरा 'रामस्नेही' और काम करते हैं 'रांडसनेही' का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं।"…

इस पर गर्ग जी पृष्ट १८ पर लिखते हैं—"स्वामी दयानन्द के मुख से कितनी सुन्दर शब्द-पुष्पों की वृष्टि हुई है।

समीक्षा—यहां भी गर्ग जी ने 'ठकुर सोहाती' कहावत चरितार्थ की है।

क्या महर्षि रयानन्द जी सरस्वती का लेख सही नहीं है ?

जो अवस्था महर्षि दयानन्द जी ने अपने लेख में लिखी है वह ठीक है तो उनका 'रांडसनेही' लिखना उचित ही है। इसे गलत नहीं कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को यह व्यवस्था देनी ही पड़ती है।

'मासिक पत्रिका 'चांद' प्रयाग का 'मारवाड़ी-अङ्क' वर्ष ८ खण्ड १, नवम्बर १६२६ ई. संख्या १ पृष्ठ संख्या २५६ से २६१ तक में 'मारवाड़ के साधु' शीर्षक लेख में इन साधुओं का पोल खोला गया है।'…

'जो तूं चाहे इन्द्रियों का भोग, जा खेड़ा पै ले ले जोग।'

अत: 'रामसनेही' को 'रांडसनेही' लिखने पर आपके पेट में दर्द क्यों हो रहा है ?

## पुष्टि मार्ग

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती 'सत्यार्थ प्रकाश' एकादश समुल्लास में लिखते हैं—'…ये गोसाईं लोग अपने सम्प्रदाय को 'पुष्टि मार्ग' कहते हैं अर्थात् खाने पीने पुष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग विलास करने को ,पुष्टि मार्ग' कहते हैं।..

सच पूछो तो 'पुष्टि मार्ग' नहीं 'किन्तु 'कुष्ठि सार्ग' है।…

इस पर चिढ़कर गर्ग जी पृष्ठ १६ पर लिखते हैं —

'…पुष्टि मार्ग को कुष्ठि मार्ग कहकर स्वागत करना, यह सिद्ध करता है दयानन्द इंसान नहीं हैवान था …"

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने सत्य बात लिख दी तो आपने गालियों की बोछार कर दी। महर्षि जी का लेख है—

'वल्लभ मत भी वाममार्गियों का भेद है। इसीसे स्त्री संग गुसाईं लोग बहुधा करते हैं।'

उन्होंने पुष्टि मार्ग के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सत्य है। गर्ग जी व्यर्थ ही झूठी वकालत करते हैं। क्या पुष्टि मार्ग वाले या नाथ द्वारे के महन्त की ओर से कुछ उत्कोच मिला है ?

वल्लभ सम्प्रदाय वालों के अत्याचारों से घबराकर इनके शिष्यों ने इन पर मुकद्दमा चलाया था। उसमें ये लोग साक्षी रूप में उपस्थित हुए थे और उस पर हाई कोर्ट जज ने जो निर्णय सुनाया था, इस समस्त भिसिल को एक अंग्रेज ने पुस्तकाकार मुद्रित करा दिया है उसी का नाम 'महाराज लाइईल केस' (MaharaJa libel Case) है। उसी से यहां कुछ प्रदर्शित किया जाता है—

इस मामले में हाई कोर्ट के न्यायाधीश कहते है कि "Laxman Bhatt (a teling) the father of Vallabb and Vaallabb limself were excommumicated by the teling for founding a new sect (Maharaja Libel Case).

अर्थात्—वल्लभ और उसका पिता लक्ष्मण भट्ट दोनों तैलङ्गी ब्राह्मण हैं। वल्लभ एक नवीन सम्प्रदाय का संस्थापक हुआ।'

इन लोगों ने पाशविक अत्याचार के लिए शास्त्र बना रखा है। उसको भी न्यायधीशों ने इस प्रकार उद्धृत किया है—

'तस्मादादौ स्वोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तु पदेन आर्यपुत्रादि नामपि समर्पणं कर्त्तव्यं विवाहानन्तरं स्वपभोगे सर्वकार्मे सर्व कार्य निमित्ते तत्तत्कार्योपभोगी यस्तु समर्पणं कार्य समर्पणं कृत्वा पश्चात्तामितानि कार्याणि कर्त्तव्यानीत्यर्थः।'

अर्थात्—वर को चाहिए कि अपनी सद्यःविवाहिता पत्नी को अपने भोग के पूर्व अपने महाराज के पास भेजे। आर्या, पुत्र ! धनादि अर्पण करे, अर्थात् जिस-जिस भोग की जो जो वस्तु हो; उस उस भोग की वह वह वस्तु महाराज के पास भेजे। पाणिग्रहण संस्कार होने के बार अपने संभोग के प्रथम, वर अपनी वधू को महाराज के पास भेजे, पश्चात् अपने काम में लावे।'

इसी को अंग्रेजी में देखिए—Cousequenrly loefone he hinself has enjouyeld her, he should make over his own married life (to the Maharrja) "After having got married he shoulp, before having himself enjoyed his life, make on offering of her (to the Maharaja), After which he should apply her to his own use." (Maharaja Lilell Case).

अन्त में हाईकोर्ट के न्यायाधीशों ने लिखा है कि—

"It is the duty of thɔ female members to love the Maaharaja

with adulterive love and sexual bush when so ever called elfnm or rebuired by any of the letter so to do······(Maharaja Libel Case).

अर्थात्—'स्त्रियां चाहे अविवाहिता कुमारी हों या विवाहिता हों, उनका धर्म है कि महाराजों से उनकी इच्छानुसार व्यभिचारिक प्रेम और विषय लालसा से प्रेम करें। महाराजों के साथ व्यभिचार करना केवल विहित ही नहीं है। प्रत्युत वह अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना कोई भी लोक परलोक के सुख की कोई आशा नहीं कर सकता। यह पाशव व्यभिचार का मार्ग ही उनके लिए स्वर्गीय सुख है। वे शैतान के जीवित अवतार हैं।'

कहिए गर्ग जी न्यायाधीशों ने तो पुष्टि मार्ग वालों को 'शैतान' कहा है। जजों को भी गाली की वर्षा कर दें, क्योंकि आपके पास और कुछ है ही नहीं!!

पुष्टिमार्ग के १० भाव प्रसिद्ध है। वे यो हैं—

(१) सब तरह केवल गुरु का आसरा (आश्रय) पकड़ना।
(२) श्री कृष्ण की भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है।
(३) लोकलाज तथा वेद शास्त्र की आज्ञा तजकर गुरु की शरण आना।
(४) देव और गुरु के सामने नम्र रहना।
(५) मैं पुरुष नहीं हूं। किन्तु वृन्दावन की गोपी हूं, ऐसा मन में समझना।
(६) नित्य गुसाईं जी के गुणगाना।
(७) गुसाईं के नाम का महत्व बढ़ाना।
(८) गुरु की आज्ञा का पालन करना।
(९) गुसाईं जो करे अथवा कहे उसी पर विश्वास रखना।
(१०) वैष्णवों का समागम और सेवा करनी।'

'गुरु को तन, मन, धन अर्पण करना। ये वस्तु समर्पण करने से ब्रह्मरूप हो जाती हैं। और उन वस्तुओं के उपभोग करने से फिर पांच प्रकार का दोष नहीं लगता।' —[सिद्धांत-रहस्य] १२१

---

(१) 'वैष्णव होकर जो अवैष्णव का सम्मान करे तो तीन जन्म तक चमार बने। (२) जो कोई गुरु और भगवान् में भेद रखे, वह पक्षी हो।···' [सड़सठ अपराध]

☀ द्रष्टव्य—'वैदिक सम्पत्ति,' पृ० ५१२, ५१३ [द्वितीय संस्करण]

१२१. 'आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री लिखित 'व्यभिचार' पुस्तक पृष्ठ ६२-६३ [साहित्य सदन, कटनी (मध्य प्रदेश) से प्राप्य]

इसी पुष्टि मार्ग, के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्ध पत्रों में भी बहुत कुछ प्रकाशित हुआ था देखिए—

'महाराजों की करतूत निन्द्य है, और इसीलिए वे प्रकाश में नहीं आते, अंधेरा ही पसन्द करते हैं। यदि वे कोर्ट में साक्षी देने को खड़े, हों तो उन पर उनके नीच कर्म के लिए पब्लिक की फटकार बिना नहीं रह सकती।...'

[बम्बई टाइम्स, दिनांक २३ अगस्त ८१]

'वैष्णों के गुसाईं जी गुरु मंत्र के बदले अतिशय व्यभिचार करते हैं। यह बात विचारने से अत्यन्त क्रूर मालूम होती है। पर उनका काम अत्यन्त नीच और उनकी दयानत पापमय है।...' [बम्बई चाबुक, ता० २१ जून १८५१]

'हिंदुओं के महाराज का मन्दिर एक छिल्लवाड़ा, उनका बैठक एक वेआबरू कुटनीका था।...' [आप अख्तियार ता० २२ जून १८५८]

स्वामी ब्लाकटानन्द जी ने 'वल्लभ कुल चरित दर्पण, वल्लभकुल दम्भ दर्पण, व वल्लभकुल छल कपट दर्पण नाटक' पुस्तकों में इनकी पोल खोली है। १२२

गर्ग जी इन उपर्युक्त घटनाओं को पढ़कर विचार करें कि महर्षि दयानन्द जी का लेख उचित है या नहीं और अपने ही शब्दों में आप

'महावज्र मूर्खाचार्य' हुए या नहीं।

पृ० २२ पर गर्ग जी 'नियोगी आर्यसमाजी ...' लिखते हैं।

यह भी उनके छिछोरपन का एक नमूना है। समस्त वेदशास्त्र, पुराण, महाभारत में नियोग की चर्चा है। पाण्डव नियोगज ही थे। जिनके बाप दादे पूर्वज नियोग करते आए हैं और वे आर्यसमाजियों को 'नियोगी' लिखें। इसका तात्पर्य यह हुआ कि गर्ग जी भी नियोगी हुए।

इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अधिक जानने के लिए Trulener & Co. Londen द्वारा सन् १८६५ ई० में प्रकाशित 'History of the sects of Maharajas or Vallalbhar Acharys in Western India-" पुस्तक पढ़िए।

## स्वामी नारायण मत खण्डन

इस मत के संस्थापक श्री सहजानन्द थे। इस मिथ्यामत की व्यर्थ ही वकालत करके गर्ग जी ने महर्षि दयानन्दजी पर कीचड़ उछाला है। महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थ-प्रकाश, एकादश समुल्लास में तो इस मत के सम्बन्ध में थोड़ा-सा लिखा है। उन्होंने श्री सहजानन्द की लिखी 'शिक्षापत्री' पुस्तक का संस्कृत में खण्डन करते हुए 'शिक्षापत्री-

१२२. वही, पृ० ६६ से ७८ तक

ध्वान्त-निवारणम्' पुस्तक लिखी है। यदि गर्ग जी में विद्वता है तो इस पुस्तक की आलोचना संस्कृत में ही करें। व्यर्थ में किसी समाज सुधारक, बाल ब्रह्मचारी, वेदों के अद्वितीय विद्वान् को गाली देना एक प्राध्यापक को शोभा नहीं देता।

जिसका पक्ष निर्बल होता है वह वितण्डावाद, गाली-गलोज का सहारा लेता है। आपकी सारी पुस्तक में बकवास (व्यर्थ की बात) के सिवाय और क्या है ?

**'ब्राह्म समाज़ पर एक दृष्टि—**

गर्ग जी ने पृ० २४ से २६ तक ब्राह्मसमाज के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के 'सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास' में लिखित बातों को अंकित कर दिया है।

उसकी आलोचना तो गर्ग जी से बन नहीं पाई तो लिखते—'वेदों में तो हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये चार जातियां ही पढ़ी हैं, किन्तु यह अन्त्यज जाति कहां से आ टपकी ?'···

समीक्षा—यह 'अन्त्यज' जाति भी वेदों से टपक पड़ी। पीछे प्रमाण देकर बतलाया गया है कि 'शूद्र और अन्त्यज' एक ही हैं। यजुर्वेद का ३०वां अध्याय का महीधर उव्वट, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र का भाष्य पढ़कर देख लें कि कितनी जातियों की चर्चा है।

गर्गजी, पृ० २४ '···यदि ब्राह्मसमाजियों के ग्रन्थों में ईसा, मूसा, नानक और चैतन्य को आदरपूर्वक स्मरण किया है तो क्या उन्होंने अक्षम्य अपराध और भयंकर पाप किया है।'

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी 'सत्यार्थप्रकाश' एकदश समुल्लास में ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज के सम्बन्ध में लिखते हैं—'वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखते हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है, उन्हीं के मतानुसारी मतवाले हैं।'

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का आक्षेप उचित है। ब्राह्मसमाजी ऋषि-मुनियों का नाम छोड़ कर ईसा, मूसा मुहम्मद का नाम क्यों लिखते हैं ? 'अपना मामा मर गए तो जुलाहा-धुनियां मामा हुए' वाली कहावत वे लोग चरितार्थ करते हैं।

किसी महापुरुष का नाम लेने से कोई पाप नहीं है पर महर्षि जी का आक्षेप सही है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तक तो ब्राह्मसमाज ठीक था उसे वे 'आद्य ब्राह्मसमाज' कहते थे। श्री केशवचन्द्र इसमें ईसाई मत के सिद्धान्तों को घुसेड़ करके यज्ञोपवीत तोड़ कर ईसाई मत की ओर झुक गए थे।

९ अप्रैल १८७९ ई० को कलकत्ता के टाऊनहाल में 'India asks—who is christ' नामक व्याख्यान में ब्राह्मसमाज के प्रमुख नेता श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशवचन्द्र सेन ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—'My christ My sweet christ, the lbrightest jewel of my heart, the necklace of my sonl, for twenly years have I cherished him in this my miserable heart.'

अर्थात् मेरा ईसा ! मेरा मधुर ईसा ! मेरे हृदय का सर्वाधिक आभावान् हीरा! मेरे आत्मा का कर्णहार ! बीस वर्ष तक मैंने उसे अपने इस सन्तप्त हृदय में धारण किया है।'

श्री केशवचन्द्र सेन 'ब्राह्मसमाज' को पूर्णरूप से ईसायत में बदलता चाहते थे।

फ्रांसीसी विद्वान् श्री **रोम्यो रोलों** ने श्री रामकृष्ण परमहंस' की जीवनी में केशवचन्द्र संत जी के सम्बन्ध में लिखा—

Crist had touched him and it was to be his mission of life to introduce nim to the Brahma Samaj? Keshal whonly accepted qxed adopted Christiandly leut extolled it with greatness and was entightened with it. He called int the loftiest expression of the world's religious Conswousness.

अर्थात्—ईसा ने उनके अन्तस्तल को स्पर्श किया था और केशवचन्द्र सेन के जीवन का यह लक्ष्य होता था कि वह ईसा को ब्राह्मसमाज में प्रविष्ट कराए, केशव ने न केवल ईसाईयत को अंगीकार और धारण किया था प्रत्युत इसे महत्त्व का उच्च आसन दिया था और वह स्वयं इससे आलोकित था। वह इसे विश्व की धार्मिक चेतना का सर्वोच्च विचार मानता था।'

इसीलिए श्री **मोक्षमूलर** 'Biograhpical essays' पृष्ठ ८९ पर पादरी क्लार्क वोयसे का यह प्रमाण उद्धृत करता है—'Believers in Keshave Chenddra San have for feited the name of thiests, because their leader has been more and more inclined to the doctrine of Christianity.'

अर्थात्—केशवचन्द्र के अनुयायी ब्राह्म कहलाने का अधिकार खो बैठे हैं। क्यों कि उनका नेता ईसाइयत की ओर अधिकाधिक झुक गया है।

**राजा राममोहन राय** स्वयं मांस मदिरा का सेवन करते थे—'राममोहन राय मांस मदिरा को बुरा नहीं समझते थे और वे स्वयं खाते-पीते थे।...उनका सिद्धांत था कि मांस के कारण परमात्मा के ज्ञान में कोई बाधा नहीं आती यदि न खाया जाए तो

बहुत अच्छा पर खाया जाए तो कोई हानि भी नहीं। मदिरा को वे औषधि के तौर पर लेते थे।' १२३

राजा राम मोहनराय के पास आजन्म यज्ञोपवीत रहा था। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी यज्ञोपवीत-धारण को एक आर्योचित कर्त्तव्य समझते थे किन्तु श्री केशवचन्द्र की बातों में आकर उन्होंने यज्ञोपवीतधारी पुरोहित और आचार्यों का ब्राह्मवेदी पर बैठ कर उपदेश देना रुकवा दिया। इसकी जो भीषण प्रतिक्रिया ब्राह्म लोगों में हुई उसी ने ब्राह्मसमाज में विघटन के बीज बोये। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर को पुन: प्राचीनता के पोषक ब्राह्मणों का साथ देना पड़ा जो 'आदि ब्राह्मसमाज' के नाम से संगठित हो गए थे।

यज्ञोपवीत के प्रति इस विरक्ति को देखकर महर्षि दयानन्द जी ने लिखा—'और जो विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और तमगों की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था।'

इस गर्ग जी से बौखला कर महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करते हैं—'यह है दयानन्द की पोपलीला। जब ब्राह्मसमाजियों का तर्क और सिद्धान्त के आधार पर खण्डन न कर सके तब वह लगे बकने ऊल-जलूल···।

दयानन्द के कपोलकल्पित ब्रह्मा, अग्नि एवं वायु नाम ऋषियों को छोड़कर···।'

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज ने ब्राह्मसमाज का जो कुछ तर्कयुक्त खण्डन किया है उसको 'पोपलीला' कहना गर्ग जी की भूल है। क्या उपनयन व शिखा न धारण करने के सम्बन्ध में लिखना 'पोपलीला' है? इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि आपको भी यज्ञोपवीत व शिखा पर विश्वास नहीं है। उपनयन व शिखा का प्रचुर प्रमाण वेदशास्त्रों में है जो यहां स्थानाभाव के कारण नहीं दिया जाता है।

आपको हिन्दी भाषा का भी ज्ञान नहीं है।

'यह है दयानन्द की पोपलीला'···वह लगे बकने ऊल-जलूल।

ये दोनों वाक्य व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं। आंग्ल भाषा में कर्त्ता के बाद ही क्रिया का प्रयोग होता है पर हिन्दी भाषा में क्रिया का प्रयोग वाक्य के अन्त में होता है। यहां 'यह दयानन्द की पोपलीला है।'

'वह ऊल-जलूल बकने लगे' वाक्य सही है।

---

१२३. पं० शिवनारायण द्विवेदोक्त 'राममोहन राय' पृ.० २०० तुलना करो डॉ. भवानीलाल भारतीय एम. ए., पी. एच. डी. कृत 'महर्षि दयानन्द और राजा राम मोहन राय' पुस्तक पृ. १११ [संवत् २०१२ वि० में आर्यप्रकाश पुस्तकालय आगरा द्वारा प्रकाशित।]

आपको व्याकरण का भी अजीर्ण है और वितण्डावाद, कुतर्क के सहारे ऊटपटांग लिखकर अपना नाम प्रसिद्ध करना चाहते हैं। ब्रह्मा, अग्नि एवं वायु नामक ऋषियो को कपोलकल्पित लिखना भी आपकी विद्वता का एक नमूना है।

'ब्रह्मा' ऋषि को सभी सनातनधर्मी (पौराणिक) मानते हैं। जो चारों वेदों का विद्वान् होता है। वह 'ब्रह्मा' कहलाता है। आप तो सनातन धर्म पर भी कुठाराघात कर रहे हैं।

'अग्नि, वायु' ऋषिको कल्पित लिखना भी भ्रममात्र है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' व 'सत्यार्थ प्रकाश' में 'अग्नि, वायु, आदित्य अङ्गिरा' इन चार ऋषियों द्वारा वेदों को प्राप्त होने का वर्णन किया है।

महर्षि का लेख सदा सत्य व वैदिक ग्रन्थों के अनुसार है यथा—

'···त्रयो वेदाऽअजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।'

[शतपथ ब्राह्मण ११.५.८.३]

अर्थ—उन तीन ऋषियों से तीन वेद उत्पन्न हुए—अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद।'

'···त्रयो वेदा अजायन्त। ऋग्वेद एवाग्नेरजायत।
यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्।···'

[ऐतरेय ब्राह्मण ५.३२]

इस पर **श्री सायणाचार्य** का भाष्य—'···प्रजापतिः संकल्पानुसारेणाग्निवाय्वादित्यरूपाणि···त्रिभ्यो वेदत्रयमुत्पादितवान्।'

पं० सुधाकर मालवीय एम. ए., पी. एच. डी., साहित्याचार्य द्वारा अनुवाद—···'अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, और आदित्य से सामवेद उत्पन्न हुए···।' १२४

यहां त्रयी विद्या की दृष्टि से कथन है।

'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्व वेदः।'

[शतपथ ब्राह्मण १४.५.४.१०]

यहां चार वेदों की चर्चा है।

'चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति।'

[गोपथ ब्राह्मणे पूर्व भागे द्द० २। क० १६]

---

१२४. ऋग्वेदीयम् ऐतरेय ब्राह्मण' श्री मत्सायणाचार्य कृत 'वेदार्थ प्रकाश'—नाम भाष्येण सहितम् 'सरला' ख्यया हिन्दी व्याख्यया चोपेतम् टिप्पण्यादि समन्वितम्' तितीयो भागः, पृ० ८८३-८८४. [संवत् २०४० वि० सन् १९८३ ई० में ताश प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी द्वारा प्रकाशित।]

**पं० क्षेमकरण दास जी 'त्रिवेदी'** कृत आर्यभाषानुवाद—'चार वेद यह हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और ब्रह्मवेद (अथर्ववेद (१२५)

'अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मा सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥
(मनुस्मृति १-२३)

पं० कुल्लूक भट्ट—'ब्रह्मा ऋग्यजुः सामसंज्ञं वेदत्रयम्।
अग्निवायुरविभ्य आकृष्टवान्। सनातनं नित्यम्...।'

अर्थात्—'उस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से नित्य ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को क्रमशः प्रकट किया।' १२६

अतः गर्ग जी का उपर्युक्त ऋषियों को महर्षि दयानन्द जी द्वारा कपोलकल्पित कहना प्रलापमात्र है।

## ईसाई मत का कच्चा चिट्ठा

ईसाई व मोहम्मदीमत की प्रशंसा करना व वकालत करना यह सिद्ध करता है कि गर्ग जी हिन्दुओं को ईसाई मुसलमान बनवाने के लिए इन लोगों से उत्कोच ग्रहण करते हैं।

श्री कालूराम शास्त्री व अखिलानन्द जी कविरत्न दोनों ख्वाजा हसन निजामी के अभिकर्ता (एजेण्ट) थे। इनकी पोल सनातनधर्मी पत्रों ने खोली थी।

ईसाइयों ने 'षड्दर्शनदर्पण' (छः दर्शनों की आलोचना), में [नार्थ इण्डिया क्रीश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी, १८ क्लाइव रोड इलाहाबाद १]; 'धर्म-तुल्ला' (प्रयाग, ५१वां संस्करण) देव व वेदों पर आक्षेप किये हैं; 'धर्म सिद्धांत प्रकाश' (इलाहावाद, द्वितीय संस्करण १९५३ ई०) ३ में राम, कृष्ण, नियोग, वेदों में गोवध आदि आक्षेप है। 'आर्य दयानन्द सरस्वती और मसीही मत' (जोजफ कृत, १९५४ ई. सिवनी) इसमें महर्षि दयानन्द जी के चरित्र पर आक्षेप है! 'गुरु परीक्षा, राम परीक्षा

---

१२५. अथर्ववेदस्य गोपथ ब्राह्मणम् आर्य भाषायामनुवादभावर्थादि सहितं' पृ० १३१ [संवत् १९८१ वि० सन् १९२४ ई० प्रयाग, प्रथमावृत्तौ,]

१२६. 'मनुस्मृति...इति व्याख्यानवकेन समलंकृता, प्रथमो भागः, पृ० ५२-५३ में ८ भाष्यकारों के भाष्य (सन् १९७२ ई० में भारतीय विद्याभवनम् चौपाटी मार्ग, बम्बई-७ द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्तिः)

+ द्रष्टव्य : मेरी लिखी हुई पुस्तक 'नीर क्षीर विवेक 'पृष्ठ १११ (संवत् २०१८ वि. में भगवती प्रकाशन, ८ ई, कमला नगर दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित) तुलना करो—'सूर्योदय' पत्र संख्या १६, १७, १८.

चन्द्रलीला और सच्चा मजहब कौन-सा है? इनमें राम पर आक्षेप के अतिरिक्त हजरत मुहम्मद पर भी घातक आक्षेप हैं। कृष्ण को चोर कहा है + (पृ० ५)×

मध्य प्रदेश सरकार ने नियोगी जांच की समिति बनाई थी। उसका प्रतिवेदन सन् १९५७ ई० में 'ईसाई मिश्नरी गतिविधि नियोगी जांच समिति, मध्यप्रदेश की सरकारी रिपोर्ट' पुस्तक प्रकाशित हुई है। अंग्रेजी में सन् १९५६ ई० Reprort of the Christion Missionary Activities conquiry Committee. Madhya Pradesh' प्रकाशित हुई है। इसमें किस प्रकार छल-कपट द्वारा ये हिन्दुओं को ईसाई बनाते हैं। उसकापूर्ण प्रतिवेदन है। १५४ मिश्नरियां हिन्दुओं को ईसाई बनाने में संलग्न हैं। ये विदेशी मिश्नरियां हैं जिनके पास विदेशों से प्रर्याप्त धन इस कार्य के लिए आता है।

हिंदुओं में ऐसे कट्टर शत्रु का जो किसी भी प्रकार का पक्ष लेता है वह हिंदुओं का प्रबल शत्रु है। गर्ग जी हिंदूत्व के रक्षक हैं या भक्षक हैं पाठक ही निर्णय करें!!

गर्ग जी, पृष्ठ ३०, ३१ में ईसाइयों की वकालत करते हुए लिखते हैं—"नारी रत्न, चिरकुमारी मरियम के विषय में दयानन्द लिखते हैं कि मरियम का गर्भवती होना 'प्रत्याक्षादि प्रमाण और सृष्टि कर्म से विरुद्ध है। इन बातों को मानना मूर्ख मनुष्य जगलियों का काम है। सम्भ विद्वानों का नहीं...।'

इस पर गर्ग जी लिखते है—'...कोई समझाए इस आंख के अंधे और गांठ के पूरे मूर्खराज दयानन्द को कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के जन्म और कर्म दिव्य हैं।... वह तो दिव्य शक्ति से अवतरित होता है। इसी प्रकार वह प्रजापति ईश्वर अपनी दिव्य सामर्थ्य से, बिना मानवकृत गर्भाधान के मरियम एवं कुन्ती को गर्भवती कर देता है।...यजुर्वेद का डिमडिम घोष है—'अजन्मा परमेश्वर गर्भ में विचरण करता है तथा सब के हृदय में विहार करता है। यह विविध रूपों में प्रकट होता है। उसके अवतार के रहस्य को धीर पुरुष ही समझ पाते हैं। वस्तुतः उस परमेश्वर में तीन लोक और चौदह भुवन स्थित है।' (यजुर्वेद ३१।१९)।...

समीक्षा—ईसाई पादरी तो राम, कृष्णादि अवतारों को गाली देते हैं और गर्ग जी वेद से ईसा की विचित्र उत्पत्ति को सही लिख रहे हैं। कुंवारी कन्याओं से जो सन्तान होती हैं उन्हें वर्ण संकर (नाजायज) ही समझा जाता है। आज भी हिन्दू, मुस्लिम अनाथालयों में ऐसे बच्चे हैं। 'ईसा' को ईश्वर का इकलौता पुत्र सिद्ध करने के लिए उनके शिष्यों ने 'न्यूटेस्टामेंट' में झूठी कहानी बनाकर लिख दी हैं।

× ईसाई मिश्नरी गतिविधि जांच समिति, मध्यप्रदेश की रिपोर्ट, संक्षिप्त हिन्दी संस्करण, पृष्ठ ८१-८२ (बाबा माधवदास जैसिंग घेरा, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित)

बाइबिल में ही आता है कि—'यदि किसी कुंवारी कन्या के विवाह की बात लगी हो। और कोई दूसरा पुरुष उस नगर में आकर उससे कुकर्म करे, तो तुम दोनों को उस नगर के फाटक के बाहर ले जाकर उनको पत्थर वाह करके मार डालूंगा—

—[व्यवस्था विवरण २२ : २३, २४] १२७

इस आदेश के द्वारा मरियम को क्या दण्ड मिलना चाहिए? मरकुस लिखता है कि—

'यीशु ने गलील के नासरत से आकर, यरदन में यूहन्दा से वापतिस्मालिया।··· और यह आकाशवाणी हुई, कि तू मेरा प्रिय पुत्र है, तुझसे मैं प्रसन्न हूं।'

—[मरकुस रचिता सुसमाचार, पृ०१ आ० १०।११] १२८

क्या इससे ईसा, ईश्वरीय पुत्र प्रमाणित होता है? आकाशवाणी का न तो कुछ अर्थ है न प्रमाण। आजकल बहुत से धूर्त आकाशवाणी की बातें लेकर भ्रमण करते हैं। उनकी ध्वनि को कोई भी परमात्मा की ध्वनि नहीं कहता।

इस आकाशवाणी को किसने सुना? कब सुना? किसके सामने सुना? इन सबका प्रमाणित होना कठिन है। मरकुश तो उस समय उपस्थित नहीं था। उसने तो जनश्रुति लिख दी। ऐसी जनश्रुति का क्या विश्वास है?

महात्मा गांधी जी अपनी 'आत्मकथा' (पृ० २०६-२०६)·में लिखते हैं,—'··· एकमात्र ईसा मसीह ही 'ईश्वर के पुत्र हैं, जो उन्हें मानता है वही मुक्ति का अधिकारी हो सकता है, यह बात मेरा मन किसी भी तरह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता था।···सात्विक दृष्टि से भी ईसाई धर्म के तत्त्वों में कोई ऐसी असाधारणता नहीं है और त्याग की दृष्टि से भी ईसाई धर्म के तत्त्वों में कोई ऐसी असाधारणता नहीं है और त्याग की दृष्टि पर तो हिंदू धर्म ही श्रेष्ठ प्रतीत होता है। मैं ईसाई धर्म को पूर्ण अथवा सर्वश्रेष्ठ धर्म मानने को तैयार नहीं हूं।···' १२८

एक अंग्रेजी लेखक ने कहा है—

"If in the creed there are two clauses more then any others that ought to be expunged assuredly. they are, was conceived by the Holy

---

१२७. 'धर्मशास्त्र अर्थात् पुराना और नया धर्म नियम' पृ० १७३ [सन् १९५० ई. में बाइबिल सोसाइटी आफ इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड सिलोन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित].

१२८. वही, पृ. २६.

१२८. श्री सूर्यबली पांडेय कृत 'ईसाई मत और उसकी काली करतूतें' पृ० ३४ [मंत्री, आर्यसमाज, जौनपुर द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति].

Gost and "Born of the viergin Mary" It is Scarcely possible without irreverence, and happily it is not necessary to state in plain language what the invevitable implecatious of these clauses are to these who aceept them is their literalness, as so many people do."

[West away's Science and Theology, P. 370] +

अर्दात्—यदि इसके विश्वास पत्र में से कोई दो वाक्य सब से अधिक निकाल देने योग्य हैं तो वे ये हैं 'पवित्रात्मा द्वारा गर्भवती हुई 'कुंधारी मरियम से उत्पन्न हुआ' क्योंकि जो लोग इनको अक्षरश: सत्य मानते हैं उनके प्रति इन दोनों वाक्यों के सब अर्थो को खोलकर रख देना बिना अशिष्ट हुए सम्भव नहीं।'

अत: महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का यह लेख नितान्त उचित है कि—'असल में यूसुफ बढ़ई था इसलिए ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था पश्चात् पैगम्बर बनता बनता ईश्वर का वेटा ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काटकूट-फूटफाट करना उसका काम था।'

—['सत्यार्थ प्रकाश, त्रयोदश समुल्लास, समीक्षा संख्या ८६]

पादरी थामसन का मत—'बाइबल में चमत्कार' नाम पुस्तक के लेखक रेवरेण्ड थामसन कहते हैं कि ईसा के कुंआरी मरियम से उत्पन्न होने की साक्षी बढ़िया नहीं है।' १२६

## यजुर्वेद ३१।१६ मन्त्र पर विचार

'प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्त:' अजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा: तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।'

—[यजुर्वेद ३१।१६]

इस मन्त्र से परमात्मा का अवतार सिद्ध नहीं होता है। यजुर्वेद ४०।८ से स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईश्वर निराकार है और उसका अवतार नहीं होता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती, पं. तुलसीराम स्वामी, (भास्कर प्रकाश में), स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड' (वेदाध्ययन प्रकाशिका में), पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ (यजुर्वेद भाष्य में), पं. वैद्यनाथ शास्त्री (आर्य सिद्धांत

---

✲ पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए० लिखित 'खुदा का बेटा' पुस्तिका, पृ० ६, [सन् १९४९ ई. में आर्यसमाज, चौक, प्रयाग द्वारा प्रकाशित].

१२६. साप्ताहिक पत्र 'आर्य मित्र' लखनऊ, वर्ष ५६, दिसम्बर १२ सन् १९५४ ई. अंक ४७ पृ० ६ कालम ३.

सागर में), महामहोपाध्याय आर्यमुनि जी (आर्य मन्तव्य प्रकाश में), इस मन्त्र से ईश्वर का अवतार नहीं मानते हैं।

गर्ग जी को सम्भवतः यह आपत्ति हो कि उपर्युक्त विद्वान् आर्यसमाजी हैं तो उनके सन्तोष के लिए प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान्, कलकत्ता विश्वविद्यालय के वेद विभाग के अध्यक्ष आचार्य पं. सत्यव्रत जी सामश्रमी मंत्र ३१।१९ में आए 'प्रजापति' का अर्थ 'जीव' करते हैं। अतः उनके मत में यह मंत्र जीवपरक है। वे लिखते हैं—

'…प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः'—इति (य० वा० सं० ३१.१९) श्रुतेः जीवोऽपि प्रजापतिर्गम्यते…।' १२९

अर्थात्—'वेद में 'जीव' भी प्रजापति से जाना जाता है।'

सामश्रमी जी के मत को मानने में गर्ग जी को क्या आपत्ति हो सकती है? अब गर्ग जी निर्णय करें कि वे 'मूर्ख राज' है या महर्षि दयानन्द जी?

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती भी 'प्रजापति' का अर्थ 'जीव' करते हैं।

प्रजा पालको जीवः—'प्रजा का पालन करने वाला जीव' [यजु० १९।७८ का दयानन्द भाष्य]

महर्षि दयानन्द जी का भाष्य, सामश्रमी जी के लेख से उचित है या नहीं?

सामश्रमी जी इस मंत्र का अर्थ जीवपरक मान रहे हैं।

**अन्य प्रमाणों से पुष्टि—**

'प्राणो हि प्रजापतिः…' [शतपथ ब्राह्मण ४।५।५।१३]

'प्राणः प्रजापतिः…' [शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।९]

'प्राण उ वै प्रजापतिः' [शतपथ ब्राह्मण ८।४।१।४]

'प्राण' का अर्थ 'जीव भी होता है।

**श्री वामन शिवराम आप्टे** लिखते हैं—

'प्राणः [प्र+अन्+अच्, घञ् वा] ।…६. जीव या आत्मा (विप० शरीर)…१३०

---

१२९. 'ऐतरेयालोचनम्' पृ० १५७ [संवत् १९६३ वि०, सन् १९०६ ई० एशियाटिक सोसाइटी, ५७ पार्क, स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करणम्, श्री हितव्रत चटर्जी द्वारा सत्य प्रेस, कलकत्ता में मुद्रित]

१३०. संस्कृत-हिन्दी कोश' पृ० ६८७ ]सन् १९६३ ई० में मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७ द्वारा प्रकाशित]

अतः उपर्युक्त प्रमाणों से यजु. ३१।१९ का अर्थ जो गर्ग जी व पौराणिक करते हैं नितान्त अशुद्ध है।

बाईबिल बच्चों व महिलाओं के अध्ययन के लिये नहीं है। क्योंकि उसमें बर्बरता व अश्लीलता का वर्णन है। १३१

**मुस्लिम मत की छान बीन**

आज तक मुसलमान किसी के मित्र नहीं हुए। पिता चाचा, भ्राता आदि को मारकर गद्दी पर बैठ जाना ऐतिहासिक प्रमाण है। भारत के दो टुकड़े कराने वाले ये ही लोग हैं। आज भी अरब देशों से अतुल सम्पत्ति भारत में इसलिए आती है कि अस्पृश्यों को मुसलमान बनाया जाए।

हिन्दुओं के विरुद्ध इनकी कई तुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—'सीता का छिनाला'; कृष्ण की 'रण्डीबाजी'; 'रद्द हिन्दू' (लेखक मौलवी मुहम्मद इस्माईल कोकनी रतना गिरि); 'रद्दे हनूद'; 'तुहफतुल हिंद'; 'खिल अतुल हनूद' (फारसी); मसनवी 'ओसूल दीन हिंद' 'तेग फकीर बर गरदन शरीर'; हृदयतुल असनाम; ।'

क्या गर्ग जी ने इन पुस्तकों को नहीं देखा ?

यदि 'कुरान शरीफ' की आलोचना कर दी तो क्या पहाड़ आपके ऊपर गिर गया जो उनकी वकालत करने लगे। गर्ग जी ! पृष्ठ ३६ में महर्षि दयानन्द जी द्वारा 'बहिश्तः' की आलोचना लिखकर महर्षि दयानन्द जी पर गालियों की बौछार करते हुए आप लिखते हैं—

'...लगता है। कुरान के बहिश्त का दिव्य वर्णन पढ़कर विषयानन्द दयानन्द की कामाग्नि भड़क उठी...।'

समीक्षा—पौराणिकों का जैसा स्वर्ग है वैसा ही मुसलमानों का 'बहिश्त' है। इसीलिए महर्षि दयानन्द जी महाराज ने 'स्वर्ग' का अर्थ 'सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का किया है' [सत्यार्थप्रकाश, 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश'].

मुसलमानों के स्वर्ग में 'हूर' व 'गिलमें' प्राप्त होंगे क्या इसे गर्ग जी मानने के लिए उद्यत हैं। क्या कुरान के बहिश्त का दिव्य वर्णन है।

---

१३१· मेरी पुस्तक 'बाईबिल में वर्णित बर्बरता तथा अश्लीलता का दिग्दर्शन' [सन् १९५५ ई० में प्रकाशित, प्रथमावृत्ति कानपुर, जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित]

**बहिश्त जन्नत (स्वर्ग) का वणन कुरान में आता है—**

और आनन्द का सन्देशा दे उन लोगों को कि ईमान लाए और काम किए उनके वास्ते बिहिश्तें हैं जिनके नीचे से चलती हैं नहरें जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जायेंगे तब कहेंगे कि वह तो वस्तु हैं जो हमें पहिले इससे दिए गये थे और उनके लिए पवित्र बीवियां सदैव वहां रहने वाली हैं।

[मं० १, सि० १, सू० २, आ० २५] १३२

'कह इससे अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिनमें नहरें चलतीं हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लाह उनको देखने वाला है साथ बंदों के

[मं० १, सि० ३, सू० ३, आ० १४]' १३३

'और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले जब देखेगा तू उनको अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए और पहनाये जाएंगे कंगन चांदी के और पिलावेगा उनको रब उनको शराब पवित्र। [मं० ७, सि० २६, सू० ७६, आ० १६।२१] १३४

'बदल दिए जावेंगे कर्मानुसार। और प्याले हैं भरे हुए।
जिस दिन खड़े होंगे रूह और फरिश्ते सफ बांधकर।'

[मं० ७, सि० ३०, सू० ७८, आ० २६।३४।३८] १३५

इस प्रकार जन्नत का वर्णन कुरान शरीफ में बहुत स्थलों पर आया है जिनमें से सूरा ५५ और ५६ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ वाक्यों का अनुवाद **श्री ख्वाजा हसन निजामी** ने निम्नलिखित प्रकार से दिया है—

'जन्नत (स्वर्ग) में ये लोग जड़ाऊ सिंहासनों तथा कामदार बिछौनों पर तकिया लगाये हुए बड़े आनन्दमंगल के साथ विराजमान होंगे। गिलमान जो सदा बहार फूल की तरह सर्वदा लड़के ही बने रहेंगे उनके पास (उत्तम-उत्तम शर्बतों के भरे हुए) गिलास और कूजे और ऐसी पवित्र तथा स्वच्छ मदिरा के प्याले ला रहे होंगे कि जिसके पीने से न कुछ उन्माद होगा और न उन्माद उतरते समय जो शिर पीड़ा होती है वह शिर पीड़ा होगी और न बुद्धि खराब होगी। और पीने की वस्तुओं के अतिरिक्त जो मेवा वह खाना पसन्द करेंगे (वह उनके लिए विद्यमान होगा) और मेवा के अतिरिक्त आत्मा को प्रसन्न तथा प्रफुल्लित करने के लिए उनके लिए खजानों में सेंते हुए (चमकदार) मोतियों

---

१३२. सत्यार्थप्रकाश, चतुर्दश समुल्लास, समीक्षा सं० ६
१३३. वही समीक्षा सं० ४६
१३४. वही, समीक्षा सं० १५०
१३५. वही, समीक्षा सं० १५१

की तरह गोरी-गोरी और मृगनयनों के सदृश बड़े-बड़े नेत्रों वाली (रूपवती) स्त्रियां भी होंगी। वास्तव में यह सब कुछ उस मन मारने और उन शुभ कर्मों का प्रतिफल है जो दुनियां में किया करते थे। इत्यादि।'

[कुरान का हिन्दी अनुवाद—ख्वाजा हसन निजामी देहलवी कृत, पृ० ७६८]

ठीक इसी प्रकार का अनुवाद पिक्थाल, रॉडवेल डिप्टीनजीर अहमद साहब ने भी किया है।

महर्षि दयानन्द जी ने इनकी समीक्षा की है—

'भला यह कुरान का बहिश्त संसार से कौन-सी उत्तम बात वाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते-मरते और आते-जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं, किन्तु यहां की स्त्रियां सदा नहीं रहतीं और वहां बीबियां अर्थात् उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं तो जब तक कयामत की रात न आवेगी तब तक उन विचारियों के दिन कैसे कटते होंगे···?

(सत्यार्थप्रकाश, १४ वां समु० समीक्षा सं० ९)

'भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यापन? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीवियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई है? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई है और जो कयामत की रात से पहले ही वहां बीवियों को वहां बुला लिया तो उनके खाबिन्दों को क्यों न बुला लिया? और कयामत की रात में सबका न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? जो उनके लिए पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीवियां कहां से देगा? और जैसे बीवियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाईं वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया?···'

(सत्यार्थप्रकाश, १४वां समु०, समीक्षा सं० ४६)

'क्यों जी मोती के वर्ण से लड़के किस लिए वहां रखे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा या स्त्रीजन उनजो तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्ट-जन करते हैं उनका मूल यही कुरान का वचन है। और बहिश्त में स्वामी सेवक भाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दुःख तथा पक्षपात क्यों है? और जब खुदा ही मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवक-वत् ठहरेगा फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहां बहिश्त में स्त्री-पुरुष समागम और गर्भस्थित और लड़के बाले होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उनका

विषय सेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आए ? और बिना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे ? यदि जन्मे तो उनको बिना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं विचारों को ईमान लाने और किन्हीं को बिना धर्म के सुख मिल जाय इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौन-सा होगा ?'

(सत्यार्थप्रकाश, १४ समु०, समीक्षा सं. १५०)

महर्षि दयानन्द जी की उपर्युक्त आलोचनाओं को अत्यन्त कठोर समझा जाता है और इसको परिवर्तन करने की सम्मति सुधारक आर्यसमाजियों को दी जाती है पर प्रसिद्ध मुस्लिम नेता, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी के संस्थापक सर सय्यद अहमद खां ने 'तफसीरूल कुरान' में बहिश्त की जो कल्पना मुसलमानों में मानी जाती है उनकी कठोर शब्दों में आलोचना की है।

**सर सय्यद अहमद खां लिखते हैं—**

'यह समझना कि जन्नत (स्वर्ग) मिस्ल एक बाग में पैदा हुई है, उसमें संगमरमर के और मोती के जड़ाऊ महल हैं। बाग में शराब व सरसब्ज दरख्त (वृक्ष) हैं, दूध व शराब व शहद की नदियां बह रही हैं, हर किस्म का मेवा खाने को मौजूद है। साकी व साकिनें निहायत खूबसूरत चांदी के कंगन पहने हुए जो हमारे यहां की घोसिनें पहनती हैं शराब पिला रही हैं। एक जन्नती हूर के गले में हार डाले पड़ा है, एक ने रान पर सर धरा है, एक छाती से लिपटा रहा है, एक ने जानबख्श का बोसा लिया है, कोई किसी कोने में कुछ कर रहा है, किसी कोने में कुछ ऐसा बेहूदापन है जिस पर ताज्जुब आश्चर्य होता है। अगर बहिश्त (स्वर्ग) यही है तो वे मुबालगा (बिना किसी अत्युक्ति के) हमारे खराबात (वेश्यालय) इससे हजार गुना बेहतर है।'१३६

'एक कूड़ मगज मुल्ला या शहवत परस्त (विषय लम्पट) जाहिद यह समझता है कि दर हकीकत (वास्तव में) निहायत अनगिनत हूरें मिलेंगी, शराबें पीयेंगे दूध व शहद की नदियों में नहाएंगे और जो चाहेंगे वो मजे उड़ाएंगे। इस लम्ब व बेहूदा ख्याल से दिन रात अवामिर के बजालाने की कोशिश करता है।' १३७

सर सय्यद अहमद खां की इस कठोर आलोचना से तो महर्षि दयानन्द जी महाराज की आलोचना कुछ भी कठोर नहीं वरन् अत्यन्त युक्तियुक्त कोमल और तथ्यपूर्ण है। हम कुछ लोग अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३४ मन्त्र ५, ६ में 'स्वर्ग का वर्णन' बतलाते हैं जिसकी प्रतिलिपि मुसलमानों ने की है।

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश। ५
धृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। ६

---

१३६. तफसीरुल कुरान, भाग १ पृ० ४४
१३७. वही पृ० ४७

यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों और पुराणकारों ने इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अपने-अपने 'वहिश्त' और स्वर्ग की कल्पना की है और यह भी कि मंत्र में, आए **'बर्हिष्ठ'** शब्द से फारसी का **'बहिश्त'** शब्द बनाया गया है। ऐसा अर्थ करने वाले एक मौलिक नियम का जो प्राचीन भाषाओं का अर्थ करने के लिए यह है कि प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ तत्कालीन साहित्य और उसमें प्रचलित अर्थों के आधार ही पर किया जाया करता है इसी नियम के आधार पर वेदों का अर्थ वैदिक साहित्य, निरुक्त, निघण्टु और ब्राह्मणादि ग्रन्थों की सहायता ही से करना चाहिए न कि प्रचलित शब्दार्थ के आधार पर।

पाश्चात्य विद्वानों में से जिन्होंने इस विषय का अध्ययन किया है उन्होंने भी मुसलमानी बहिश्त की कठोर आलोचना की है।

**मार्कस डाड्स एम० ए० डी० डी०** (Marcus Dods M.A., D.D.) अपनी पुस्तक में लिखते हैं—'Such passages frequently Occur in theearly Suras of Kora and I think a Candid mind must own to being some what shocked and disappointed by the low ideal yf perfected human bliss set befor the Mohammedans.' १३८

अर्थात्—'ऐसी पंक्तियां कुरान के पूर्व सुराओं में स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं और मैं समझता हूं कि मुसलमानों के सम्मुख पूर्ण मानव कल्याण के अधम आदर्शों के द्वारा निष्कपट व्यक्ति को आघात और निराशा की ही प्राप्ति होगी।'

पादरी गैरिनड्र नामक विद्वान् ने 'रिप्रोच आफ इस्लाम' (Reproach of Islam) नाम के ग्रन्थ में 'हीव्न एण्ड हेल इन इस्लाम' (Heaven and hell in Islam) शीर्षक के नीचे लिखा है कि—

'There is indeed little in the representation of paradise given in tqe Kuran and expanded by the Commentators to uplift the soul. It is first and foremost a garden of dclights, of either a gaudy or a sensual nature. It is true, that in one or two places, the vision of Gold is set down as the greatest joy of all, and the most spiritual of Muslim doctors have not failed to seize that point and to attempt to spiritualise the gross imagery employed.

138. 'Mohammed Buddha and Christ PP 49 तुलना करो मासिक 'सार्वदेशिक' वर्ष २१, अप्रैल १९४५ ई०, अंक २, पृ० १०

attempts have been a failure. The large mass of Muslim always have teken and always will take thedescription of paradise in the Kuran the Kurau as literaly.' 139

अर्थात् कुरान में जो स्वर्ग का स्वरूप वर्णित है जिसकी भाष्याकारों ने व्याख्या की है उसमें आत्मा को उत्थान करने वाली चीज वास्तव में कम है। यह प्रथम और प्रधानतया एक आमोद-प्रमोद की वाटिका है, जो आडम्बरमय या भौतिक सुखमय है। यह सत्य है कि एक-दो स्थानों पर ईश्वर दर्शन को सबसे बड़े आनन्द के रूप में वर्णित किया गया है और आध्यात्मिक प्रकृति वाले कुछ मुस्लिम विद्वानों ने इसके आधार पर कुरान में प्रयुक्त स्थल कल्पना को आध्यात्मिक सिद्ध करने का प्रयत्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, किन्तु ऐसे प्रयत्न सर्वथा असफल हुए सिद्ध हुए हैं मुसलमानों की बड़ी संख्या स्वर्ग के स्वरूप को कुरान में वर्णित शब्दों के अनुसार ही भौतिक लेती रही है और सदैव लेती भी रहेगी।

इस कल्पना के दोष को प्रदर्शित करते हुए इस विद्वान् ने आगे लिखा है—

'The curse of Koranic imagery in that its most direct and significant appeal is Carnal, A vnique chance to uplift, to spiritualise was lost. One the country, it was truned into a unique means of stardardising the low level at which ordinary fallen human nature in all too content to live. The imagery of hell is similarly material and its elaborate and terrible details are intended to be interpreted in a strictly material sense. All the description of both heaven and hell, interme diate state, resurrection and Judgment are then throvghly materialistic.'140

अर्थात्—'कुरान की बुराई यह है कि इसकी सीधी और उद्बोधक प्रार्थना भोग-विलास सम्बन्धी है। आत्मा को ऊंचा उठाने वा आध्यात्मिकता को बढ़ाने का अवसर इसने खो दिया। इसके इसके विरुद्ध इसने ऐसे हीन परिमाण को सर्वथा अपना लिया जिस पर रहने में ही साधारण पतित मानवीय प्रकृति सन्तुष्ट रहती है। इसी प्रकार नरक की कल्पना भी सांसारिक है और इसके विस्तृत और भयंकर वर्णन बिल्कुल शब्दशः लिए जाने के लिए हैं। स्वर्ग-नरक, माध्यमिक स्थिति, पुनरुत्थान और प्रलय के सब वर्णन स्पष्टरूप से भौतिक है।'

---

१३९. पादरी डब्ल्यू० एच० टी० गैरिड्नर कृत 'दी रीप्रोच आफ इस्लाम' पृ० १५२
१४०. वही, पृ० १५३

**मुसलमानों के विचार—**

**कवि गालिब कहते हैं—**

'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को गालिब यह खियाल अच्छा है।१४१

**कवि शेख इब्राहीम का कथन है—**

कब हक परस्त जाहिद जन्नत परस्त है।
हुरों पै मर रहा है यह शहवत परस्त है।' १४२

उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि **दाग** ने कहा है—

'जिसमें लाखों बरस ही हूरें हो।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई। १४३

**श्री अब्दुल गफूर बी० ए०** कहते हैं—स्वर्ग सम्बन्धी कुरान की शिक्षा और भी कुत्सित और घिनावनी है। सच पूछो तो कुरान की शिक्षा ने स्वर्ग को ऐसा बुरा घर बना दिया है कि जहां जाना भले मानसों का काम तो कदापि नहीं है परन्तु कितने ही मूर्ख लोग स्वर्ग की बात ठीक मान कर रात-दिन उसकी प्राप्ति की प्रार्थना करते है।' १४४

स्वर्ग वालों को लड़के भी मिलेंगे जो बिना दाढ़ी मूंछ के युवा होंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि लड़कों की वहां क्या आवश्यकता है? लड़के किनको मिलेंगे पुरुषों को अथवा स्त्रियों को? न्याय तो यही चाहता है कि जब एक-एक पुरुष को बहुत-सी हूरें मिलेंगी तो एक-एक स्त्री को बहुत से युवा लड़के मिलने चाहिएं। परन्तु कुरान से इसका निबटारा नहीं है बुद्धिमान् तथा न्यायप्रिय पुण्य स्वयं इसका निबटारा कर सकते हैं। मैं खुदा से प्रार्थी हूं कि वह सबको उपर्युक्त स्वर्ग से बचावे।' १४५

सन् १९४४ ई० में ताज कम्पनी, लाहौर से कुरान का उर्दू में अनुवाद मुद्रित हुआ है जिस पर जनाब मुफ्ती मुहम्मद किफायत अल्ला प्रधान जमायते उलमाएं हिन्द दिल्ली का प्रमाण-पत्र है कि मैंने ताज लि० लाहौर की ख्वाहिश पर इस कुरान मजीद का मतन हरभ व हरफन पूरे गौरइमजाने नजर से पढ़ा और जहां तक इन्सानी सही का ताल्लुक है मैं पूरे वसूक से कह सकता हूं कि इस मसहफे मुकद्दिसे (पवित्र पुस्तक) मतन में कोई गलती नहीं रही। गलतियों की दुरुस्ती भी मैंने अपनी निगरानी में करवा दी।'

---

१४१. पं० नरेन्द्र जी कृत 'महर्षि दयानन्द और चौदहवां समुल्लास' 'प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८'
१४२. वही
१४३ वही पृ०२८ नं० २९
१४४. 'तर्क इस्लाम' पृ० २७ (पुस्तक भण्डार, जयपुर द्वारा प्रकाशित)
१४५. वही पृ. ३०-३१

उसमें से स्वर्ग विषयक आयतों का अनुवाद देना यहां उचित प्रतीत होता है जिससे भली भांति ज्ञात हो जाय कि महर्षि दयानन्द जी ने जिस आधार पर समालोचना की थी वह कितना ठीक था। उसमें लिखा है—

'ऊपर चारपाइयों, सोने की तारों से बनी हुई के हैं—तकिए किए हुए ऊपर उनके आसने सामने फिरेंगे ऊपर उनके लड़के हमेशा रहने वाले, साथ आबखोरों के और आफताबों के और प्यालों के शराब साफ से नहीं सिर रखाए जायेंगे इससे और न वेजा बोलेंगे और मेवे इस किस्म से बदला उस चीज का कि वे करते और बिछौने बुलन्द तहकीक हमने पैदा किया और औरतों उनकी को पैदा करना पक्ष किया हमने उनको कुवारी सुहागवालियां हम ऊपर वास्ते दाहिनी तरफ वालों के'

[पृष्ट ७७७-८८८]

इस प्रकार यह सर्वथा स्पष्ट है कि कुरान में जिस प्रकार के जन्नत का वर्णन है वह सांसारिक है यहां तक कि हदीसों के अनुवाद में लिखा है कि—

"Abu Musa relates that the Apostle of God said, verily there is a tent for every Muslim in paradise, it is made of one pearl, its breadth is 60 kos and in every corner of it will be his Wives; they will not see one another The Muslims shall love them alternately.

Abu said relates that the apostle of God said, 'He who is least amongst the people of paradise shall have eighty thousand slaves and seventy two woman, and has a tent pitched for him of pearls, rubies and emeralds." 146

अर्थात्—अब्बू मूसा ने बताया कि खुदा के पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) ने कहा था कि जन्नत में प्रत्येक मुसलमान के लिए मोतियों से बना हुआ तम्बू होगा। इसकी चौड़ाई ६० कोस होगी। और इसके प्रत्येक कोने में उसकी स्त्रियां होंगी। वे एक दूसरे का नहीं देखेंगी। मुसलमान उनको बारी बारी से प्रेम करेंगे।

अब्बू ने कहा कि जो स्वर्गवासियों में सबसे निचले दर्जे पर हैं उसको भी ८० हजार गुलाम और ७२ स्त्रियां और हीरे मोतितों से जड़े हुए तम्बू मिलेंगे।'

146. See Mishkat book XXXIII. xIII Quoted in the dictionary of Islam PP. 50 तुलना करो 'सार्वदेशिक' का 'सत्यार्थ प्रकाश का चतुर्दश समुल्लांक' (३) वर्ष २१, अप्रैल १९४५ ई० अंक २, पृ० १३-१४

उपर्युक्त उक्तियों से जो सही बुखारी में प्रामाणिक तौर पर अंकित हैं मुस्लिम बहिश्त की भौतिकता में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं रहता जिसकी महर्षि दयानन्द जी कृत समालोचना ठीक ही है।

हूरों के सम्बन्ध में 'इन्सांयक्लोपीडिया आफ इस्लाम' वाल्यूम ३ में लिखा है—

'When the believer enters. Paradise he is welcomed by one of these Huries and a large number of them are at his disposal, he cohabits with each of rhem as often as he has fasted days in Ramzan and as often as he has performed good works besides and yet they remain virgins. They are equal in age to their husbands. 33 years.

Albadavi observes that it is not agreed whether the Huries. are earthly women or not.'

[Encyclopedia of Islam Vol. III, PP. 337]

अर्थात्—'जब एक विश्वासी मुसलमान बहिश्त में प्रवेश करता है तो उसका इन हूरियों में से एक स्वागत करती है और उनकी बहुत बड़ी संख्या उसके लिए विद्यमान रहती है। वह उनमें से प्रत्येक के साथ उतनी बार सहवास करता है जितने रमजान के दिनों में उसने उपवास किया होता है और अच्छे काम किये होते हैं। तो भी वे कुमारियां ही रहती हैं। उनकी आयु उनके पतियों के समान ३३ वर्ष की होती हैं।'

अल्बदावी कहता है कि इस विषय में सब सहमत नहीं हैं कि हूरियां पृथ्वी की स्त्रियां है या नहीं।'

इससे स्पष्ट हो गया कि महर्षि दयानन्द जी की इस विषयक आलोचना सही है।

**पादरीह्यज** लिखते हैं—

'Muhammadan doctors, whether Sunni, Shiahor, Wahalbi are all agreed as to the literal interpretation of the Sensual enjoyments of the Muslim paradise, and very many are the books written giving minute particulars of the joys in store for the faithful.' 147

अर्थात् —'मुसलमान विद्वान् चाहे वे सुन्नी, शिया, बाहावी सभी स्वर्ग के भोगों की भौतिकता से सहमत हैं और मुसलमानों के लिए स्वर्ग में जो आनन्द मिलेंगे उनके विस्तार का प्रतिपादन करने वाली बहुत सी पुस्तकें विद्यमान हैं।'

---

147. "Dictianary of Islam" PP. 45

अतः नवीन कुरान के टीकाकारों की कल्पना के आधार पर महर्षि दयानन्द जी की सत्य आलोचना पर आरोप करना कितना अनुचित है।

महर्षि की समीक्षा को सामने रखकर मोलवी मुहम्मद अली अपने सिद्धांत में सुधार करके भी दूसरे मतों पर आक्रमण करने से नहीं चूके। वह लिखते हैं—

'This idea of ceaeless advancement in Paradise is one which is peculiar to the Holi Quran and not the least trace of it is to be met within any other Scripture.'

(भूमिका पृष्ठ LXVI)

अर्थात्—स्वर्ग में इस समाप्त होने वाले अभ्युदय का विचार कुरान शरीफ की अपनी विशेषता है और इसका थोड़ा सा भी चिह्न किसी दूसरे धर्म ग्रंथ में नहीं मिलता है।'

मौलवी मुहम्मद अली का उक्त कथन मिथ्या है। वे स्वर्ग नरक की अपनी इस कल्पना को अन्य मुसलमानों से मनवालें तो फिर अन्य मतों पर आक्रमण करें। किन्तु यदि कुरान ऐसा ही मानता है तो कुरान का यह विचान न अनूठा है और न उसका अपना है। वेद में कहा है—

'आरोहणमाक्रमण जीवतो जीवतोयनम्।'

[अथर्व० काण्ड ५, सूक्त ३०, मन्त्र ७]

अर्थ—'ऊपर चढ़ना' आगे की ओर बढ़ना, यही प्रत्येक जीवन युक्त जीव की वास्तविक गति है।'

उन्नत होने की भावना सर्व प्रथम वेद ने दी, वेद से अन्य ग्रंथों ने ली।

कुरान में यह लिखा है 'इस्लाम की अपेक्षा जो अन्य धर्म का अनुयायी है उसे ईश्वर के यहां स्वीकार नहीं किया जाएगा, और दूसरे जीवन में वह उनमें से होगा जो नष्ट होने वाले हैं।'

यह उद्धरण 'कुरान सू० ३ आ० ८५ का' है और ऊपर उद्धृत अनुवाद सेल का है। यह आयत 'बमेंय्यब्तगि गैर इस्लामी दीनन् फलै य्युक्बल मिन्हु, बहुव फिल् आखिरति मिनल् खासिरीन्" है जिसका अर्थ ख्वाजा हसन निजामी के अनुवाद में इस प्रकार है कि, 'जो कोई इस्लाम के अतिरिक्त किसी और धर्म का इच्छुक हो तो उसका धर्म कदापि स्वीन होगा और वह मरणान्त में हानि उठायेगा।'

[हसन निजामी कृत 'हिन्दी अनुवाद' पृष्ठ ८६]

**शम्सुल उलमा मौलाना नजीर अहमद** ने इसका अनुवाद उर्दू अइस प्रकार किया है—'जो शख्स इस्लाम के सिवाय किसी और दीन की तलाश में हो तो

खुदा के यहां उसका वह दीन मकबूल नहीं और वह आखिरत में जियाकारों में होगा।'

[कुरान का उर्दू अनुवाद ख्वाजा हसन निजामी कृत अनुवाद में उद्धृत पृ० ८६]

**मौलाना मुहम्मद अलीएम. ए.एल. एल.बी.** ने इस आयत का अंग्रेजी अनुवाद किया है—

Who ever desires a religion other than Islam, it shall not be accepted from him and in the hereafter, he shall be one of the losers.' 148

अर्थात्—'इस्लाम की अपेक्षा जो अन्य धर्म की इच्छा करता है, वह (खुदा के द्वारा) स्वीकार नहीं किया जायेगा और यहां के बाद (मरण पर), वह हानि उठाने वालों में से होगा।'

**श्री थोमस कालाईल** (Shree Thomas Carlyle) ने अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

'Mohammed's paradise is sensual, his hell sensual true, in the one and other there is enough that shocks all spirtual feeling in us. But we are to recollect that the Arbas already had it so, that Mahomad in what ever he changed of it, softened auddiminished all this. The Worst sensualities, too are the work of doctors, followers of his, not his work. In the Koron there is realy very little said about the joys of paradise, they are intimated rather than insisted on.' 149

अर्थात्—'मुहम्मद का स्वर्ग भौतिक है। उसका नरक भौतिक है यह सत्य है। इन दोनों में बहुत सी ऐसी चीजें हैं जो हमारी समस्त आध्यात्मिक भावना को आघात पहुंचाती है किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि अरब लोगों में स्वर्ग, नरक की ऐसी कल्पना विद्यमान थी और मुहम्मद ने उसमें से कुछ कोमल और कुछ में परिवर्तन कर दिया जो अधिक से अधिक खराब भौतिकता स्वर्ग-नरक की कल्पना में पायी जाती है वह

---

148. Translation of the Holy Quaran Mohammed ali M. L. L. B. PP. 65.

149. 'The Heroes and Hero-worship.' By T. Carlyle D. C. Health Co publishers Boston, PP, 79-80.

मुहम्मद की अपनी नहीं वरन् उनके अनुयायियों की है। कुरान में स्वर्ग के आनन्द के विषय में वास्तव में बहुत थोड़ा कहा गया है, उनका केवल संकेत किया गया है न कि उन पर जोर दिया गया है।

अतएव महर्षि दयानन्द जी ने जो बहिश्त व दोजख की आलोचना की है वह समुचित है और वे आलोचनाएं पाश्चात्य विद्वानों की आलोचनाओं से कहीं अधिक कोमल, शिष्ट और संयत भाषा में है। मुसलमानों में बहुत ही अन्ध विश्वास है और महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों को तथा उनकी आलोचनाओं को पढ़कर बहुत से सुधारक, शिक्षित मुसलमानों ने बहु विवाह, विवाह-विच्छेद (तलाक) मतान्धता, तथा पर्दा पद्धति का प्रबल खण्डन करते हुए इन विषयों में सुधार की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से बतलाया हैं।१५०

मैसूर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मुहम्मद अली शूस्त्री ने 'Out line of Islamic Culture' नामक तुस्तक दो भागों में लिखी है जिसमें उपसंहार करते हुए उन्होंने बतलाया है कि—

'It is difficul tto predict the future of Islam as world religion, but it is certain that Islam as interpreted taught and brought into practice by conservative and orthodox Mullahs or Maulives, cannot endure long. Similarly the belief in pirs and Fakirs (who though they may call themselves Sufis' exploit the masres) may have to end before long.' 151

अर्थात्—'विश्वधर्म के रूप में इस्लाम के भविष्य के विषय में कहना कठिन है परन्तु यह निश्चित है कि कट्टरपंथी व संकीर्ण विचार वाले मुल्ला वा मौलवियों द्वारा प्रतिपादित, प्रचारित तथा क्रियात्मक रूप में परिणत इस्लाम देर तक नहीं ठहर सकता। इसी तरह पीर और फकीर (चाहे वे अपने को सूफी कहकर अशिक्षित जनता को क्यों न बहकाते फिरें) को भी शीघ्र त्यागना पड़ेगा।'

मैं ऐसे अन्ध विश्वास, विज्ञान विरुद्ध यवनमत को परित्याग कर मुसलमानों को वैदिक धर्म की शरण में आने के लिए निमन्त्रण देता हूं।

---

१५०. देखो श्री खुदाबख्श एम० ए० बी० सी० एल, बार एट ला कृत 'Essay Indian and Islamic' पुस्तक पृष्ठ २५६ से २५८ तक तथा 'Studies in Islam.' पुस्तक.

151. Out lines of Islamic Cultūre' Vol II PP. 766.

अतः महर्षि दयानन्द जी की 'बहिश्त' के सम्बन्ध में आलोचना समुचित है।

महर्षि दयानन्द जी को 'विषयानन्दी' लिखना आपकी सभ्यता का नमूना तथा नीचता की पराकाष्ठा है।

पृष्ठ ४४ में :दयानन्द छल कपट दर्पण' व पेशावर के मौलवी का निर्णय 'सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध देना आपको मान्य होगा । श्री जियायाल जैनी व पेशावर के मजिस्ट्रेट मौलवी अंजाम खां आपके लिए ऋषि महर्षि होंगे मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं । वे कोई आप्त नहीं हैं जो मान्य हों।

क्या 'सत्यार्थ-प्रकाश' द्वितीय संस्करण महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत नहीं है ?

गर्ग जी पृष्ठ ४६ में लिखते हैं···'यह संस्करण दयानन्द की अपनी हस्तलिखित रचना नहीं है···।'

सत्यार्थ प्रकाश' में संशोधन स्वामी जी ने स्वयं किया था। प्रथम संस्करण को उन्होंने स्वयं रद्द कर दिया था। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—

'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम संस्करण सन् १८७५ ई० में स्टार प्रेस, बनारस में मुरादाबाद निवासी श्री राजा जयकृष्णदास जी के व्यय से मुद्रित हुआ था।

'सत्यार्थ प्रकाश' का द्वितीय संस्करण सन् १८८४ ई० में 'वैदिक मन्त्रालय प्रयाग' में मुद्रित हुआ था और उसका ही पुनर्मुद्रण प्रयाग तथा अजमेर आदि नगरों में हुआ, यही वह 'सत्यार्थप्रकाश' है जो कि महर्षि दयानंद और आर्यसमाज को मान्य है।

महर्षि दयानन्द जी का देहावसान ३० अक्तूबर सन् १८८३ ई०, तदनुसार दीपावलि संवत् १९४० वि० को हुआ था।

'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका निर्माण किस प्रकार हुआ। यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द जी की जन्मभूमि काठियावाड़ (गुजरात) में थी और उनकी मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने अध्ययन संस्कृत भाषा का किया था इसलिए वे संस्कृत भाषा में प्रगल्भ थे। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने कोई विदेशी भाषा अथवा भारत की प्रांतीय भाषा भी सीखी थी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता इसलिए वे गुजराती तथा संस्कृत भाषाएं ही जानते थे। यह निश्चय है कि महर्षि दयानन्द ने सन् १८६४ में विद्याध्यवन समाप्त किया और श्री स्वामी विरजानन्द जी से विदाई ली। उस समय से लेकर मई सन् १८७४ ई० तक उत्तर भारत में महर्षि दयानन्द संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान देते रहे और कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् उनके व्याख्यान का प्रान्तीय भाषा में अनुवाद कर दिया करता था। इन्हीं दिनों में कलकत्ते में एक विशेष घटना हुई। २३ मार्च, सन् १८७३ ई० को महर्षि ने एक व्याख्यान संस्कृत भाषा में कलकत्ते में श्री गोराचंद सेन के मकान पर दिया था। ब्राह्म-समाज के नेता श्री केशवचंद्र जी भी उस व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान का बंग

भाषा में में अनुवाद पं० महेशचंद्र न्यायरत्न ने किया। अनुवाद के समय संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों ने यह आपत्ति उठाई कि न्यायरत्न महोदय महर्षि के अभिप्राय का अन्यथा वर्णन कर रहे हैं और ऐसी बातें कह रहे हैं जो महर्षि ने नहीं कही। इस पर श्री केशवचन्द्र सेन ने महर्षि को सम्मति दी कि वे प्रांतीय भाषा सीख कर उसमें ही व्याख्यान दिया करें। उन्होंने इस सम्मति को स्वीकृत कर लिया और हिन्दी भाषा सीखनी प्रारम्भ कर दी। सबसे प्रथम महर्षि ने मई सन् १८७४ में वारणसी में हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने का यत्न किया। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक हिन्दी भाषा नहीं जानते थे।

उन दिनों श्री राजा जयकृष्णदास जी वाराणसी के डिप्टी कलेक्टर थे। आपने स्वामी जी से अपने विचारों को पुस्तकाकार करने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने इसे स्वीकार कर लिया, तब राजा साहब ने पं० चन्द्रशेखर नाम के व्यक्ति को पुस्तक लिखने के लिए नियुक्त किया। स्वामी जी अपनी भाषा में बोलते थे और पं० चन्द्रशेखर लिखते थे। स्वामी जी हिन्दी तो जानते नहीं थे। संस्कृत में ही बोलते थे, और पं० चंद्रशेखर हिन्दी में अनुवाद करके लिखते थे। इस प्रकार 'सत्यार्थ प्रकाश' का निर्माण जून सन् १८७४ ई० को प्रारम्भ हुआ और वह सन् १८७५ ई० में वाराणसी में मुद्रित हुआ।

इसके दो वर्ष के अनन्तर अर्थात् सन् १८७७ ई० में श्री स्वामी जी एक स्थान पर मृतक श्राद्ध पर व्याख्यान दे रहे थे और उसका खंडन कर रहे थे। इतने में ही एक व्यक्ति जनता में से ही एक पुस्तक दिखला कर बोला कि स्वामी जी ने पुस्तक में तो मृतक श्राद्ध का मण्डन किया है और व्याख्यान में खंडन कर रहे हैं। स्वामी जी के पूछने पर उसने 'सत्यार्थ प्रकाश' दिखला दिया। स्वामी जी के तुरन्त उत्तर दिया कि आक्षेप उचित है और लेखकों ने मेरे आशय के विरुद्ध पुस्तक में लिख दिया है। श्री स्वामी जी ने कुछ मास पश्चात् ही १८७८ में एक विज्ञापन मुद्रित करवाया जो कि यजुर्वेद भाष्य के प्रथम अंक के टाइटल पृष्ठ पर मुद्रित हुआ। वह इस प्रकार था—

"सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों के अनुकूल हैं मैं उनको मानता हूं विरुद्ध बातों को नहीं, इससे जो-जो मेरे बनाए 'सत्यार्थप्रकाश' वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्य सूत्र या मनुस्मृति आदि पुस्तकों के बहुत से वचन लिखे हैं, वे उन ग्रंथों के मतों को जानने के लिए लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध अप्रमाण मानता हूं। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती है उन सबको प्रमाण करता हूं क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये हुए वेदार्थानुकूल ग्रन्थ है उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं और जो 'सत्यार्थप्रकाश' के ४२ पृष्ठ २५ पंक्ति में पित्रादिकों में जो कोई जीता हो उसका तर्पण करे और जो मर गये हैं उनका तो अवश्य

करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिए कि जीवितों की श्रद्धा सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है, और जो मर गये हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता है और न मरा हुआ, पुत्रादि के दिए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य नहीं। इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहां देख लेना।"[1]

अब सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में विचार कीजिए।

श्री स्वामी जी ने इसकी भूमिका उदयपुर में भाद्रपद सं० १९३९ में समाप्त कर दी थी जैसा कि भूमिका के अन्त में छपा है। निःसन्देह यह ग्रन्थ स्वामी जी की मृत्यु तिथि दीपावली सं १९४० से एक वर्ष पूर्व ही लिखा जा चुका था, जैसा कि निम्न-लिखित प्रमाणों से स्पष्ट है—

(१) महर्षि ने सं०.१९३१ में पंच महायज्ञ विधि का प्रथम संस्करण बम्बई में मुद्रित कराया था। उसके पितृ तर्पण प्रकरण में लिखा है -- श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्यर्थं 'यत् क्रियते तत् तर्पणम्।' (पृष्ठ २०-२१)।

अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषः श्रद्धया सत्याचारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्रद्धया देवा द्विजोत्तमान्, इत्युक्तत्वात् (पृष्ठ २१) इससे स्पष्ट रूप से जीवित श्राद्ध का विधान किया है।

'सत्यार्थ प्रकाश' का लेखन ११ सं० १९३१ वि० से प्रारम्भ हुआ था। उसके लगभग ३ मास पीछे 'पंच महायज्ञ विधि' का लेखन हुआ था। इससे स्पष्ट है कि उस समय महर्षि पितरों का श्राद्ध नहीं मानते थे।

(२) महर्षि ने एक पत्र मुंशी समर्थदान जी को लिखा था जो कि उस समय वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के प्रबन्धक थे। पत्र इस प्रकार है—

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २९ अगस्त को लिखा आया, समाचार विदित हुआ। और जो तुमने रजिस्टर और दोनों की भाषा और सभा का कृत्य भेजा, पहुंचा। इस भाषा को देखकर जैसा होगा वैसा लिखा जायेगा……।

……आज यहां से २४८ से लेके २७८ तक 'सत्यार्थप्रकाश' और १८१० से लेके १८९५ तक ऋग्वेद के पन्ने भाषा बनाने के लिए भेजे हैं। पहुंचने पर ज्वालादत्त को

(१) पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन प्रथम संस्करण, पृष्ठ १००।

को दे देना और रसीद भेज देना। प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' के पत्र २५० तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ रामसनेही के निकट धरे हैं सो ४८-४९-५० अंक घटे हैं। तुमको भ्रम न हो। परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहां २५० पृष्ठ हैं उनके अन्त और २४८ पृष्ठ आदि की संगति तुम मिला देना और २५१ पृष्ठ के आदि और जो अब २५० वां पेजा है उसकी सभी संगति मिला देना, और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्र भेज दिये हैं।

जोधपुर (मारवाड़)

दयानन्द सरस्वती

भाद्र बदी ३० संवत् १९४०

यह पत्र महर्षि जी ने अपने देहावसान से दो मास पूर्व लिखा था। यह सिद्ध करता है कि महर्षि जी के जीवनकाल में ही 'सत्यार्थ-प्रकाश' के द्वितीय संस्करण के ग्यारह समुल्लास छप चुके थे।

(३) मुंशी समर्थदान जी, आनन्दित रहो।

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेक ३४४ तौरेत और जबूर का एक विषय सत्यार्थ प्रकाश में भेजते हैं सम्भाल लेना। आश्विन वदी ८ सोमवार सम्वत् १९४० को सस्कार विधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं पहुंचे होंगे और पहुंचने पर रसीद भेज देना।

मिती आश्विन १३ शनि सम्वत् १९४०,

ह० दयानन्द सरस्वती

उक्त पत्र से यह स्पष्ट है कि महर्षि के जीवन काल में ही 'सत्यार्थ-प्रकाश' ३४४ पृष्ठ तक छप चुका था। तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थ-प्रकाश' के तेहरवें समुल्लास में है। यह पत्र महर्षि जी ने अपनी मृत्यु से एक मास पूर्व लिखा था।

(४) आश्विन बदि ८ सोमवार सम्वत् १९४० (२४ सितम्बर, १८८३) ई० का मुन्नी समर्थदान जी के नाम पत्र—

मुन्शी समर्थनदान जी, आनन्दित रहो।

आज संस्कार विधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं, सम्भाल के छपवाना। —और 'सत्यार्थ-प्रकाश' जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से चले पूर्व अथवा समूचे पहुंचते समय भेज देंगे।

दयानन्द सरस्वती

इन सब उद्धरणों से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो गई कि 'सत्यार्थ-प्रकाश के संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपि महर्षि के निर्वाण से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी और १३ वें समुल्लास तक की प्रेस कापी महर्षि के निर्वाणसे लगभग १ मास पूर्व मुद्राणलय में पहुंच गयी थी अतः आपका यह आक्षेप करना कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' का संशोधित संस्करण महर्षि दयानन्द जी का बनाया हुआ नहीं, सर्वथा मिथ्या है।

## लेखक की प्रकाशित अन्य पुस्तकें

१—जादूविद्या-रहस्य
२—अथर्ववेद की प्राचीनता
३—भारतीय इतिहास की रूप-रेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि
४—आर्यसमाज के द्वितीय नियम की व्याख्या
५—महर्षि दयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन
६—भारतीय इतिहास और वेद
७—ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात
८—आर्यसमाज में मूर्तिपूजा-ध्वान्त निवारण
९—वामनावतार की कल्पना
१०—वैदिक काल में तोप व बन्दूक
११—उपनिषदों की उत्कृष्टता
१२—महर्षि दयानन्द जी की दृष्टि में यज्ञ
१३—वैदिक शासन पद्धति
१४—पाश्चात्यों की दृष्टि में वेद ईश्वरीय ज्ञान
१५—कुशवाहा क्षत्रियोत्पत्ति मीमांसा
१६—राठौड़ कुलोत्पत्ति मीमांसा
१७—बाइबिल में वर्णित बर्बरता तथा अश्लीलता का निदर्शन
१८—आर्य दयानन्द सरस्वती और मसीहमत-पर्यालोचन
१९—पाश्चात्यों की दृष्टि में इस्लामी मत-प्रवर्तक
२०—सत्यार्थ प्रकाश भाष्य तृतीय समुल्लास
२१—सामवेद का स्वरूप
२२—अद्भुत वैज्ञानिक जादूकौशल
२३—मनोवैज्ञानिक जादूविद्या चमत्कार
२४—'वैदिक एज' पर एक समीक्षात्मक दृष्टि
२५—प्रयाग महात्म्य
२६—भ्रम निवारण (जैनमत का थोथा अहिंसावाद)
२७—वैदिक देवता रहस्य
२८—महर्षि दयानन्द तथा आर्य-समाज को समझने में पौराणिकों का भ्रम
२९—शिवलिङ्ग पर्यालोचन
३०—अष्टादश पुराण-परिशीलन
३१—नीर क्षीर-विवेक
३२—वैदिक सिद्धांत मार्तण्ड
३३—आर्यों का आदि जन्म स्थान निर्णय
३४—श्रीमद्भागवत महापुराण में व्याकरण की अशुद्धियां
३५—गणित के जादू
३६—लड़खड़ाते जीवन (उपन्यास)
३७—मेरी आठ रोचक कहानियां
३८—इन्द्र-अहल्या उपाख्यान-वास्तविक स्वरूप और महर्षि दयानन्द
३९—सत्य साईं बाबा का कच्चा चिट्ठा
४०—क्या अथर्ववेद में मृतक श्राद्ध है ?
४१—मार्कण्डेय पुराण की आलोचना

**प्राप्ति स्थान** :—डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह शास्त्री, एम० ए०
'वेदवाणी' कार्यालय, पो० बहालगढ़-१३१०२१
जिला :—सोनीपत (हरयाणा)

—"मैं तो अपना तन, मन, धन सब कुछ सत्य के ही प्रकाशनार्थ समर्पण कर चुका। मुझसे खुशामद करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार का लाभ पहुंचाना ही मुझे राज्य के तुल्य है।"

—'मैंने कोई नया पंथ चलाकर गुरुगद्दी वा मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगों को मतवादियों के मठों से स्वतन्त्र करना चाहता हूं। ऐसी पदवियों से अन्त में हानियां ही हुआ करती हैं।"

—"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं कि तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना या मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

—"यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इसके मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात किए विना यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसा ही बर्ताव दूसरे देश के मत वालों के साथ करता हूं। मेरा मनुष्यों की उन्नति का व्यवहार जैसा स्वदेशियों के साथ है वैसा ही विदेशियों के साथ है।"

—स्वामी दयानन्द सरस्वती